संगर ने उर्दू और अंग्रेजी में कलम मांज कर सफलता प्राप्त की है और अब हिन्दी ने इस पले-पलाये लेखक को खींच लिया है।

संगर की कहानी और उपन्यास परम्परागत परिपाटियों की बैसाखी लेकर साहित्य के मार्ग पर नहीं चलता क्योंकि उसकी अपनी स्वतंत्र शैली पंगु नहीं है। उसकी शैली में इतना बल है कि अपने ढंग से अपने क़दमों चल कर भी वह पाठक के हृदय में पैठने के लक्ष्य तक पहुँच जाती है। प्रकाशक भी इसी भरोसे संगर की इन रचनाओं को पारखियों के निर्णय के लिये निधड़क प्रस्तुत कर रहे हैं।

यशपाल

अफ्रीका का आदमी

सत्यप्रकाश संगर की अन्य पुस्तकें

घर की आन	(उपन्यास)
अवगुण्ठन	(कहानी संग्रह)
नया मार्ग	"

अफ्रीका का आदमी

(कहानी संग्रह)

सत्यप्रकाश संगर

विप्लव कार्यालय, लखनऊ

अप्रैल १९५३

अफ्रीका का आदमी

संगर का यह संग्रह हम इस भरोसे से प्रस्तुत कर रहे हैं कि इस रचना का परिचय पाकर पाठक उनकी अन्य रचनाओं की खोज और प्रतीक्षा करेंगे।

संगर की इन कहानियों में हमारे आधुनिक जीवन के रोज़मर्रा के अनुभवों का सहानुभूतिपूर्ण, विश्लेषणात्मक परिचय है। लेखक ने विकट घटनाओं की खोज नहीं की है। उसे प्रत्येक कदम पर साहित्य की सामग्री पड़ी मिल रही है। हम उपेक्षा में कितनी ही हास्यास्पद बातें कर जाते हैं। हमारी यह उपेक्षा ही संगर की कथावस्तु है।

इन पृष्ठों को पढ़ते समय पाठकों के होंठ बार-बार स्वयम अपने ऊपर किये गये विद्रूप से मुस्कान में सिकुड़ेंगे फिर भी वे लेखक के प्रति क्रोध अनुभव न कर सकेंगे क्योंकि उसने उपदेशक के अहंकार से प्रताड़णा नहीं की है। संगर ने "आओ भाई!" पुकार कर सर्वसाधारण मध्यवर्ग के बीच खड़े हो अपने समाज का एक चित्र खिंचवा लिया है। वही चित्र सामने रख कर 'अफ्रीका का आदमी' कहता है—"बस यही तो हैं आप!"

इस पुस्तक से पाठकों के मन में संगर की रचनायें पढ़ने की जो चाह जागेगी उसकी पूर्ति के लिये हम शीघ्र ही उनकी एक और पुस्तक पाठकों के सामने रखने की व्यवस्था कर रहे हैं।

प्रकाशक

विषय सूची

अफ्रीका का आदमी

१

अफ्रीका का आदमी

जब मैंने अमृतसर एक्सप्रेस के उस सेकिन्ड क्लास कम्पार्टमेन्ट में प्रवेश किया, तो उस के सब दरवाजों और खिड़कियों को बन्द और चार मूर्तियों को अपनी ओर झाँकते हुए पाया। ऊपर की सब बर्थ खाली थीं। सामने वाली बर्थ पर एक महिला सीट पर टांगें पसारे बैठी थी। उस के सामने वाली बर्थ पर एक सरदार साहब बैठे थे, उन की आठ वर्ष की पुत्री उन के समीप बैठी गुरमुखी की सचित्र प्राईमर से खेल रही थी। तीसरी सीट पर साधारण खाकी कमीज और पेन्ट पहिने एक महाशय बैठे थे। उन की सफेद लम्बी डाढ़ी और उन की आकृति से यह प्रगट हो रहा था कि वे कभी मल्लाह मांझी रह चुके हैं। चौथी सीट पर केवल एक बिस्तर बिछा था। इस पर सफेद चादर नहीं थी, न पलंग-पोश ही, अपितु पंजाब की छपी हुई खेसी थी जो कि प्रायः पंजाब के देहात में बनती और वहीं काम में लायी जाती है। सीट के बाईं बाजू पर एक जरसी सूख रही थी। इसे देखने से यह पता चलता था कि कभी उस पर भी यौवन की

बसन्त थी, परन्तु समय की परिस्थिति ने उस की आकृति बिगाड़ दी थी। अब उस की सफेदी तो उड़ चुकी थी या छिप चुकी थी, और काला रंग इस पर छाया हुआ था। साथ ही ऊपर के भाग में इस में स्थान-स्थान पर छिद्र थे, जैसे नये रंगरूटों ने इस पर चांदमारी का अभ्यास किया हो। कमरे के फर्श पर एक बंधा हुआ बिस्तर पड़ा था जो कि बिछौने की बजाय खड़ा किया हुआ था ताकि उस की पोजीशन से लाभ उठा कर एक गीले तौलिये को इस पर डाल कर सुखाया जा सके। अधेड़ आयु की महिला और डाढ़ी वाले महाशय में कोई आकर्षण न पाकर, और बन्द कमरे के वातावरण को सन्देह भरी दृष्टि से देखता हुआ, उल्टे पांव लौट आने के विचार को क्रियात्मक रूप देने की इच्छा कर ही रहा था कि सरदार साहब ने सीट पर बैठने की आज्ञा दी, जैसे स्कूल का मास्टर लड़के को बैठ जाने की आज्ञा दे। मैं खामोशी से बैठ गया। दिल ने कहा "अजीब बुद्धू हो जी। व्यवहारिक धन्यवाद तो देना चाहिये था।" दूसरी आवाज ने लथाड़ा "अरे जा, धन्यवाद के चचा। सीट क्या उस के बाप की थी? इस ने कौन सा एहसान किया है। टिकिट खरीदने में बटुआ तो मेरा खाली हो और धन्यवाद के पात्र हों अन्य।"

"आपके देश में अनाज की क्या पोजीशन है?"

मैं चौंक उठा, बायीं ओर दृष्टि डाली, सरदार साहब टकटकी बांधकर मेरी ओर देख रहे थे। मैंने सोचा खुद से बातें कर रहे हैं। मैं उनकी पत्नी की ओर देखने ही वाला था कि सरदार साहब ने फिर ललकारा।

"आपके देश में अनाज की पोजीशन सन्तोषप्रद तो नहीं है?"

"क्या आप पंजाब को अभी से एक स्वावलम्बी सिक्ख रियासत मान चुके हैं, सरदार साहब ?"

"नहीं नहीं", वे मुस्काराने का गुप्त प्रयत्न करते हुए बोले।

"मैं मैं पंजाब का निवासी नहीं हूं।"

"तो क्या आप होनूलूलू के निवासी हैं ?"

"नहीं, ईस्ट अफ्रीका का।"

"पैदायशी ?"

"नहीं पैदा होने का अपराध तो मैं यहाँ कर बैठा था।"

"नहीं, सरदार साहब ! इसमें आपका क्या अपराध था।" मैंने उन्हें अत्यन्त गम्भीरता से धीरज बंधाते हुये कहा।

"परन्तु शुक्र है कि मेरे बच्चे इस देश में पैदा नहीं हुये, जहाँ की अनाज की पोजीशन भी इतनी डामाडोल है !"

"परन्तु अनाज तो बहुतायत से दिसावर से आ रहा है।" मैंने उनकी चिन्ता दूर करने के विचार से कहा।

"हा ! हा ! हा !" सरदार साहब मेरी बात की हंसी उड़ाते हुये बोले, "तो दिसावर का अनाज आप का कैसे हुआ ?"

"जब यहाँ पहुँच गया तो।"

"यदि न पहुंचे ?"

"कोई लूट मची हुई है, सरदार साहब ? पैसे देते हैं और अनाज खरीदते हैं।"

"परन्तु यदि कल विश्व-युद्ध छिड़ जाय तो क्या कीजियेगा ?"

"अनाज उत्पन्न करेंगे।"

"अब आप इस समय पैदा नहीं कर सकते, फिर कैसे कर सकेंगे?"

"उस समय तक पैदा करना सीख जायेंगे।"

"क्या?" सरदारनी साहिबा दूसरी सीट पर से बोलीं।

"अनाज!" सरदार जी ने उत्तर दिया। "परन्तु देखिये," वे मुझे संबोधित करते हुये बोले। "आप के देश की दशा अत्यन्त शोचनीय है। जन-गणना बढ़ रही है, उपज घट रही है। और गवर्नमेंट खामोश है।"

सरकारी नौकर होने के कारण अन्तिम वाक्य ने मुझे जोश दिला दिया और मैंने वफादारी दर्शाते हुए कहा,

"आप विदेशी लोग हर बात में हमारी सरकार को अपराधी ठहराते हैं। अंग्रेजी शासनकाल में बंगाल के दुर्भिक्ष से बत्तीस लाख मनुष्यों के मर जाने पर आप की ज़बान पर कभी शिकायत का एक शब्द भी नहीं आया। हमारी सरकार ने इस चार वर्ष के समय में जो भयङ्कर और सफल युद्ध अन्दरूनी और बेरूनी दुश्मन से और जो मुकाबला प्राकृतिक शक्तियों से किया, इस के बारे में आपने प्रशंसा का एक शब्द भी नहीं कहा। यह हमारी सरकार की कड़ी दौड़-धूप ही का कारण था कि नदियों के पूर और अनावृष्टि के लगातार आक्रमणों के बावजूद यहाँ दुर्भिक्ष को आक्रमण करने का साहस तक न हुआ। फिर यदि उक्त कारणों से उपज में कमी रही, तो बाहर से अनाज मंगवा कर हम ने कौन सा नैतिक अपराध किया? कौन देश आवश्यकता की वस्तुएँ बाहर से नहीं मंगाता? फिर सरदार

साहब ! आज तो संसार के देश एक दूसरे पर किसी सीमा तक आश्रित हैं। और फिर....''

''आप तो कालेज के प्रोफेसर मालूम देते हैं।'' वे मेरी बात काट कर बोले।

''और आप भी....'' बड़े परिश्रम से मैंने वाक्य को रोका। तुरन्त मुझे इस बात का विचार आया कि कालेज का प्रोफ़ेसर कहना तो कोई गाली नहीं, परन्तु आजकल शब्द 'प्रोफेसर' पर जो बीतती है, इससे ईश्वर बचाये।

''आपकी बात में वज़न अवश्य है।'' सरदार साहब मेरे उत्तर की उपेक्षा करते हुये बोले, ''नहीं तो मैंने इस दो मास के निवास में यह देखा है कि हिन्दुस्तानियों की बातों में वज़न भी नहीं होता।''

''परन्तु आपने इनकी बातों को किस तराज़ू पर तोला है?''

''बुद्धि की तराज़ू पर,'' सरदार साहब ने तुरन्त उत्तर दिया।

''कैसे ?''

''जैसे आपके यहाँ के कम्युनिस्टों को लीजिये। हमारे गांव में, मेरा अभिप्राय जहाँ मैं उत्पन्न हुआ था, उस गांव में कम्युनिस्टों का एक गिरोह है। वह प्रातः से सायं तक रूस का राग अलापते हैं। कहीं मास्को में पानी बरसता है तो यहां अपने सिर पर छत्रियां तानते हैं! एक दिन तंग आकर मैंने उन से कहा। ''यदि भारत में कम्युनिज़म आ जाय तो या तो आप को जेल होगी या फांसी।'' ''क्यों?'' एक साहब मुस्कराकर बोले। मैंने कहा, ''रूस में प्रत्येक मनुष्य को कम-से-कम आठ घण्टे काम करना पड़ता है। परन्तु तुम लोग हो

कि काम के नाम से भी परिचित नहीं। हाथ नहीं हिलाते। पैर नहीं हिलाते। और जब पैर को हिलाते हो तो दूसरों के घरों में चोरी छिपे जाने के लिये, और हाथ को हिलाते हो उनका बकरा या मुर्गा चुराने के लिये। और फिर मुफ्त की पीने को ढूंढते हो चाहे गांव की निकली हुई क्यों न हो। और पीकर जुबान को वश में नहीं रख सकते। उलटा-सीधा बकते हो। लोगों की बहू-बेटियों की इज़्ज़त की उपेक्षा करते हो। वे इन बातों से अवश्य जल-भुन जाते हैं, परन्तु सत्य कटु होता है। अब प्रोफेसर साहब यदि ऐसे लोग गोली का निशाना नहीं बनेंगे तो किसी कन्सेन्ट्रेशन कैम्प में अपना जीवन व्यतीत करेंगे। यदि मार्क्स के सुन्दर नियमों और सुनहले सिद्धान्तों को ये लोग जनता में पापुलर नहीं बना सकते, तो इस का मूल कारण यह है कि इन की बातों में वज़न नहीं।"

"सरदार साहब! क्या अफ्रीका के किसी स्कूल में अध्यापक हैं ?"

"मैं इस्कूल बिस्कूल में नहीं हूँ। मैं तो मोटरों के एक कारखाने में काम करता हूँ।"

"मोटरों के कारखाने में!" मैंने आश्चर्य-चकित होकर कहा।

"क्यों! आप की दृष्टि में कोई अक्षम्य अपराध कर रहा हूँ।"

"मेरा मतलब यह नहीं।" मैंने झेंप को छिपाते हुए कहा।

"बिलकुल यही है।" सरदार जी पांव को कम्पार्टमेंट के फर्श पर मारते हुये बोले। "भारत में कला-कौशल की

उन्नति के अभाव का यही कारण है कि यहाँ के मनुष्य वैसे काम करने वालों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। मैं अपने गांव के लुहारों को इसी दृष्टि से देखता था। मैं समझता था कि खेती ही इज़्ज़त से जीवन निर्वाह का एक कारण है। परन्तु अफ्रीका जाकर मुझे इस दृष्टिकोण को बदलना और अपने पेशे को छोड़ना पड़ा। और अब मैं खूब कमा रहा हूँ। आप स्वयं को लीजिये······"

"सरदार साहब! आप यह बतलाइये······" मैंने आने वाले हमले की बात न लाते हुये, बचने के विचार से बात बदलते हुए कहा।

"वह भी बतलाऊँगा। परन्तु आप खुद को लीजिये। आपने स्कूलों और कालेजों में पढ़ कर माँ-बाप को कंगाल बनाया होगा, और विशेष योग्यता प्राप्त करने के उपरान्त नौकरी के लिये द्वार-द्वार मारे मारे फिरे होंगे। अब आप अफसर होंगे या प्रोफेसर और बहुत कमाते होंगे तो चार पांच सौ मासिक।"

"आपकी दृष्टि में चार पांच सौ कुछ नहीं ?"

"क्यों नहीं ? परन्तु मैंने किसी स्कूल में शिक्षा नहीं पायी और इस से दुगना रुपया कमाता हूँ। यदि मैं अफ्रीका में पढ़ा-लिखा होता तो भी मुझे इस काम से घृणा नहीं होती। फिर क्या पढ़ने लिखने या अफ़सर बनने ही से बुद्धि तो नहीं आती न बात करने का ढंग।"

"देखिये, सरदार साहब! मुझे दुबला पतला देख कर इस प्रकार आप को आक्रमण करने का कोई अधिकार नहीं।"

"बिलकुल नहीं। परन्तु मैं आपको अपने जिले के डिप्टी कमिश्नर की कहानी सुनाता हूँ। मैं उन के पास रिवालवर

का लाईसेन्स लेने गया। मेरे पास अपने हाई कमिश्नर के हाथ का लिखा हुआ एक सिफारिशी पत्र था। परन्तु जिले के हाकिम ने इसे कोई महत्व नहीं दिया। अब देखिये कि हाई कमिश्नर के सामने एक डिप्टी कमिश्नर की क्या हकीकत ? परन्तु हायरे हिन्दुस्तान ! यहाँ के पढ़े-लिखों में भी इतनी सभ्यता नहीं, इतना ढंग नहीं......"

"परन्तु सरदार जी, वह जिले का अफसर है, ज़िले की जिम्मेदारी उस के सिर पर है।"

"इस से क्या होता है।" वे भुँझलाकर बोले। "हाई कमिश्नर के ऊपर कोई जिम्मेदारी नहीं ? वह दूसरे देश में आप का प्रतिनिधित्व कर रहा है। यहां कलक्टर के विषय में मैंने सुना है कि उस का एक चचा वजीर था। उस ने उसे उस स्थान पर लगा दिया। आप के देश में तो यह हवा फैली हुई है कि एक आदमी किसी बड़े पद पर पहुंचा, कि लगे हाथ उसने अपने सम्बन्धियों का नौकरियों में भरना आरम्भ किया।"

"यह तो प्रत्येक देश में होता होगा।"

"होता होगा, परन्तु प्रत्येक देश में नहीं। प्रगतिशील राष्ट्र इस पालिसी को अपना कर उन्नति नहीं कर सकते। फिर दूसरे देशों में देशभक्ति की भावना होती है जो उन्हें ऐसे काम करने से रोकती है।"

"लेकिन स्वतंत्रता के बाद तो हमारे देश में देशभक्ति के न होने की शिकायत नहीं हो सकती, और हमारे अफसर भी आजकल खूब देशभक्त बन रहे हैं।'

"सोलह आने !" सरदार साहब ने ताने से कहा। "आपके अफसरान एक दूसरे की नुकता-चीनी में इतने संलग्न रहते हैं

कि बेचारों को अपने काम के लिये समय नहीं मिलता। मेडिकल डिपार्टमेन्ट को शिकायत है कि स्कूलों के मास्टर स्कूलों से अनुपस्थित रहते हुए भी वेतन पाते हैं, इन्सपेक्ट्रान मास्टरों के घर खाना ही नहीं, हलवा पूरी उड़ाते हैं। शिक्षा विभाग नगर-पालिका पर यह दोषारोपण करता है कि स्कूल तो हम खोलते हैं और समाचार पत्रों में कमेटी की प्रशंसा के गीत गाये जाते हैं, गलियाँ और नालियाँ गन्दी हैं, सड़कें शिकस्ता हैं, परन्तु डिनर व एट-होम पर हजारों रुपये फूँक दिये जाते हैं। लोकल-सेल्फ-गवर्नमेंट को पी० डबल्यू० डी० के विरुद्ध यह शिकायत है कि ये प्रतिवर्ष उन्हीं सड़कों की मरम्मत कराते हैं, और उन्हें इस काम से दिलचस्पी नहीं जितनी ठेकेदारों की रोजगारी से। पी० डबल्यू० डी० का कथन है कि देहात सुधार विभाग को गांव के सुधार से कहीं अधिक चीतों और शेरों के शिकार की चिन्ता रहती है। और देहात सुधार गला फाड़-फाड़ कर इस बात की घोषणा कर रहा है कि अस्पतालों में जितना शोर और गन्दगी होती है, उतनी......"

मैं कांप ही तो उठा। सरदार साहब का ध्यान उधर से हटाने के विचार से मैंने कहा—

"सरदार साहब! उस डिप्टी कमिश्नर को आप ने क्या कहा?"

"जो दिल में आया। मैंने उसे कहा कि श्रीमान् जिन हाई कमिश्नर के विषय में आपने यह बात कही है, उसे शायद आप जानते नहीं। हिन्दुस्तान भर के कलक्टरों को यदि एक पलड़े में रख दिया जाय और उन्हें दूसरे में, तो दूसरा पलड़ा भारी निकलेगा। हिन्दुस्तान की अन्दर की

स्थिति तो बिगड़ी हुई है परन्तु इस के विदेशी-प्रतिनिधि इस के गौरव को दूसरे देशों में चार चाँद लगाये हुये हैं।"

"इसका कारण ?"

"नेहरु का चुनाव। इस देश का नाम दूसरे देशों में चमक रहा है और आपके शेष नेता.........."

"परन्तु पंजाब की राजनीति के विषय में आप की क्या सम्मति है ?" मैंने जान बूझ कर उन्हें कांटों में घसीटते हुये कहा।

"यही कि साम्प्रदायिक नेताओं को कन्सेन्ट्रेशन केम्पों में भेज देना चाहिये।"

"परन्तु हमारे देश में तो प्रजातन्त्र है," मैंने विरोध किया।

"यदि उन्हें जेलों से बाहर रखा गया तो प्रजातन्त्र समाप्त हो जायगा।"

"कैसे ?"

"प्रजातन्त्र की आड़ में ये लोग गजब की बातें करते हैं। जैसे सिख-राज्य की स्थापना। और नीचे स्तर की लचर युक्तियां पेश करते हैं। पाकिस्तान के निर्माण से इन लोगों ने कोई शिक्षा ग्रहण नहीं की। और फिर यदि सिख-स्टेट का बनना आवश्यक है, तो पारसी, जैनी, ईसाई, हरिजन आदि आदि क्यों न अपनी अपनी स्टेट के लिये मांग पेश करें ? फिर आज शान्ति, मेलजोल और प्रेम उत्पन्न करने के स्थान पर ये लोग घृणा की अग्नि प्रदीप्त कर रहे हैं। केवल सिक्ख ही नहीं, हिंदू भी इस राग को अलापते हैं। और आश्चर्य की बात तो यह है कि मुसलमान भी। मैंने कुछ उर्दू के समाचार पत्र पढ़े और दंग रह गया। आज भी उर्दू

के पत्र दो जातियों के दृष्टिकोण को उभार रहे हैं। इस पर लम्बे लम्बे आर्टिकिल लिख रहे हैं।"

"यह तो प्रजातन्त्र है सरदार साहब!" मैंने उन्हें काटा। "लिखने बोलने की पूरी पूरी आज़ादी है।"

"निःसन्देह। परन्तु वे यह नहीं समझते कि इस दृष्टिकोण ने देश को कितनी हानि पहुँचाई है। और आज फिर इस रागनी को छेड़ने का अर्थ सिक्खों और दूसरों की माँगों को शक्ति पहुँचाना है।"

गाड़ी एक स्टेशन पर आकर रुकी। मैंने खिड़की खोल कर बाहर देखा। स्टेशन के प्लेटफार्म पर खूब चहल-पहल थी और भीड़। एक सूट पहिने साहब हमारे पास से गुज़रे और थूक का खकार साफ सुथरे फर्श पर फेंक कर चलते बने। मैंने सरदार साहब की ओर देखा, वे तुरन्त बोले,

"यह है शिक्षा इस देश की। सूट पहिनने में तो अंग्रेजों का अनुकरण सीख गये, परन्तु स्वच्छता के नियम पालन में उन का अनुकरण नहीं किया। और न कर्तव्यों के विषय में। आप के नगरों की सड़कें थूक और पान से भरी रहती हैं। और सड़कें या तो हैं ही नहीं, या टूटी फूटी, और आपकी पी. डब्ल्यू डी.! जितना कहा जाय उतना कम है। वाह रे हिन्दुस्तान! यहां की कई बातों पर मुझे दुःख होता है।"

"अपितु सब बातों पर।" मैंने उन्हें ठीक किया।

"बातें ही वैसी हैं," सरदार जी ने तुरन्त उत्तर दिया। "यहाँ पर स्टेट के लाखों रुपये खर्च कर इलेक्शन जीतने-जिताने की आड़ में कई सूबों में प्रौढ़-शिक्षा या समाज-शिक्षा आरम्भ की गई है ताकि अनपढ़ों को पढ़ाया जा सके।

परन्तु क्या ही अच्छा होता है कि कोई उन्हें समझाये कि पहिले पढ़े-लिखों को तो पढ़ाओ।"

"सरदार जी! मैंने आप पर व्यक्तिगत आक्षेप नहीं किया। परन्तु आप......"

"मेरे मित्र, व्यक्त अव्यक्त कुछ नहीं, केवल सच्चाई बता रहा हूँ। इस देश के पढ़े लिखे लोग मूर्ख हैं। शिक्षा का अभिप्राय कुछ नियमों या पुस्तकों को कण्ठाग्र करना नहीं, अपितु उन के आचरण से अपना जीवन सुधारना भी है। अब यहाँ के शिक्षित-वर्ग में स्वच्छता नाम को भी नहीं। जहाँ चाहेंगे थूकेंगे, पेशाब करेंगे, सिगरेट के टुकड़े और रद्दी कागज़ फेंक देंगे। हलवाई की दूकानों के सामने खड़े होकर मिठाई खायेंगे और जूठे दोनों को वहीं फेंक देंगे। आप के नगर में, जहां म्युनिसपिल कमेटियां हैं, जिसके मेम्बर और प्रेसीडेन्ट उच्च शिक्षा पाए मनुष्य हैं! वाह गुरू ही कृपा करे। शहर के बीच बाजारों में स्थान स्थान पर कूड़े के ढेर, गन्दी नालियां! पेशाब घरों की दुर्गन्ध, केले के छिलके और फिसलने की आज़ादी! और इस पर गर्व यह कि कोई भी मनुष्य इस बात का विचार तक नहीं करता। आज़ादी मिलने के चार साल बाद भी यह हाल है। राम, राम!"

"सरदार जी! आपने इस देश की कोई अच्छी बात भी देखी है?" मैंने हँसी के तौर पर कहा।

"अवश्य देखी है। जैसे प्रत्येक व्यक्ति यह चाहता है कि वह मालदार बन जाय और इसके लिये प्रयत्न शेष न उठा रखे। आप के देश में दुकानदार ही नहीं, हर व्यवसायी ब्लेक-मार्केट करता है। स्कूल का मास्टर और कालेज का प्रोफेसर भी।"

"सरदार जी ! जरा......" मैं मुँह सँभालकर कहने वाला था कि मुझे ध्यान आया कि वे कहीं कृपाण न संभाल लें। परन्तु उसी समय मैंने सोचा कि वे तो अफ्रीका के निवासी हैं।

"मैं बिलकुल ठीक कह रहा हूँ," वे तुरन्त बोले। "मास्टरों और प्रोफेसरों का काम बच्चों को पढ़ाना है और स्वयं पढ़ना होता है। मगर बच्चों को पढ़ाने के स्थान पर वे ट्यूशन करते हैं। ट्यूशन का इतना बाजार गर्म है कि स्कूलों की आवश्यकता ही अनुभव नहीं होती। स्वयं पढ़ने की उन्हें इतनी आवश्यकता अनुभव नहीं होती, हाँ वे पढ़ कर सस्ती नोटस की पुस्तकें लिखते हैं ताकि वे गरम केकों की तरह बिक कर उन की जेबें पैसों से भर सकें। वकीलों के बारे में मुझे कहने की आवश्यकता नहीं, क्यों कि आप मुझ से अधिक जानते हैं कि उनके जीवन का पहला आवश्यक कार्य पैसा कमाना है, दूसरा राजनीति में भाग लेकर नेता और मिनिस्टर बनने की अभिलाषा रखना। डाक्टरों का काम भी वही है। ईश्वर बचाये, कैसे लूट मचाते हैं ये लोग, और कोई कान तक नहीं हिलाता। आप के देश में बीमार पड़ने से बढ़ कर कोई अधिक खतरनाक काम नहीं। डाक्टरों की फीस, दवाइयाँ और इन्जेक्शन दिवाला निकाले देते हैं। फिर दवाइयों में, इतना ब्लेक-मारकेट ! कोई पाबन्दी ही नहीं हो सकती। इस पर तुर्रा यह कि मैंने किसी डाक्टर को स्वस्थ और किसी अस्पताल को स्वच्छ नहीं देखा।"

"सरदार साहब ! कहीं कोई पुलिस में आपकी रिपोर्ट न कर दे," मैंने उन्हें सावधान किया।

"पुलिस !" सरदार जी जोर से अट्टहास करते हुए बोले।

"आपकी पुलिस कमाल है। आपको मालूम है कि परसों मेरे जिले के पुलिस के कप्तान के घर डाका पड़ा। सब लूट ले गये। और सशस्त्र गार्ड को बाँध कर छोड़ गये। हा! हा! हा! जब मैं जाकर अपने हाई कमिश्नर को बतलाऊंगा तो वे खूब हसेंगे। हा! हा! हा!"

"सरदार जी! आपके हृदय में तो एन्टीइन्डियन ज़हर कूट-कूटकर भरी है।"

"हाँ! हर इन्डियन हर विदेशी से वैसा ही कहता है और एक सूबे वाला दूसरे से," वे अत्यन्त गम्भीरता से बोले।

"प्राविन्शियलिज्म (प्रान्तीयता) का भूत जितना आप लोगों की छाती पर सवार है, उतना और कहीं भी नहीं। आपके उच्च शिक्षित व्यक्ति इस रोग का अधिक शिकार हैं। इस का कारण इन का स्वार्थ, अज्ञानता और क्षुद्रता है। यहाँ धर्म के बाद प्रांतीयता, पक्षपात विषैली तलवार की तरह काम कर रहा है। और इस का प्रभाव जीवन के प्रत्येक भाग पर पड़ रहा है।"

"सरदार जी! क्षमा कीजियेगा। आपके मुख से हिन्दुस्थान के लिये एक भी अच्छा शब्द नहीं निकला।"

"यह क्या बुरे शब्द थे मित्र? परन्तु वस्तुतः आप का देश प्रजातन्त्र होने के कारण इलेक्शन में लगा हुआ है। प्रजातन्त्र के कितने लाभ हैं! एक व्यक्ति विशेष परिस्थिति के कारण मंत्री का पद पा लेता है, और अच्छी प्रकार जानता है कि ऐसा अनुकूल वातावरण फिर हाथ न आयेगा। अतः वह क्यों न इस अवसर से लाभ उठाये और वह लाभ उठाता भी है। आलीशान मकान बनाता है, और बैंक का एकाउन्ट बढ़ाता है। फिर वह मनुष्य जिस ने कभी स्कूल के

अन्दर कदम न रखा हो, परिस्थितिवश अपने आप को मंत्री बना पाता है, और एडमिनिस्ट्रेशन की ऐसी की तैसी करता है। अफसरों से बदला लेता है, दिल खोल कर तरक्कियां और तख्फीफ करता है। इस प्रकार प्रजातन्त्र के अनेक लाभ हैं। और आजकल सारा देश इलेक्शन में लगा हुआ है, और हर कोई मिनिस्टर बनना चाहता है ताकि रुपया पैदा कर सके, मकान बना सके और एडमिनिस्ट्रेशन की......"

"ऐसी की तैसी कर सके।" सरदारनी साहिबा ने दूसरी सीट पर से वाक्य को पूरा किया।

गाड़ी ने सीटी दी।

मैंने तुरन्त कहा—

"सरदार जी! अभी आता हूं।' और द्वार खोल कर नीचे उतरने लगा।

"परन्तु मैं जानता हूँ," सरदार जी ने पीछे से हँस कर फरमाया "कि आप नहीं आयेंगे। झूठ बोलना भी हिन्दुस्तानी का एक विशेष गुण है। वह..."

मैंने उस डिब्बे से उतरते ही तेज़ कदम उठाये और दूसरे सैकंड क्लास में जा घुसा।

गाड़ी तब तक प्लेटफार्म से सरक चुकी थी।

अपना-पराया

अपना-पराया

आठ हजार फुट की ऊँचाई पर जून का महीना भी दिसंबर से कम ठण्डा नहीं होता। धूप वहाँ प्रिय लगती, शांत वातावरण को वायु के तीव्र झोंके विक्षुब्ध कर देते। उन के पीछे काले और श्वेत बादलों के दल बढ़े आते। क्या सुन्दर दृश्य होता! पूर्व से काले और पश्चिम से सफेद बादल उमड़े चले आते और परस्पर टकरा जाते। परन्तु उनकी टक्कर द्वेष के कारण नहीं थी। प्रेम का मिलाप था। दोनों सेनाएँ गले मिलतीं और आगे बढ़तीं। उन दोनों में कितनी समझ थी, कितना समझौता था! स्वयं जियो और दूसरों को जीने दो। सफेद बादल जाकर काली घटाओं के कान में फूंकते कि मैदान खाली है और सुन्दर अवसर है। काली घटाएँ आकाश की नीलिमा को एकदम छिपा लेतीं और पर्वतों की चोटियों पर पूर्ण शक्ति से बरसने लगतीं, जैसे कई युगों का बदला ले रही हों। परंतु वे ऊँची चोटियां उस हमले को व्यंगपूर्वक सहन करतीं।

उन चोटियों ने न जाने ऐसे कितने आक्रमण सहन किये थे। हज़ारों वर्षों से यही कुतूहल देखती आई थीं। एक ओछे पुरुष की तरह वे उन से घबराती नहीं थीं। वे उन्हें उसी

प्रकार सहतीं जैसे सूर्य के ताप और हिम की ठण्डक को। बरसात में वर्षा न थमती, सर्दियों में बर्फ न रुकती। परन्तु वे अपनी जगह पर अटल सब देखतीं और मुस्करा कर सब सहतीं। शायद वे जीवन के रहस्य को समझ गई थीं जहाँ सर्दी और गर्मी, आँधी और तूफान, बसंत और पतझड़ आते और चले जाते हैं, जहाँ कुछ भी नित्य नहीं। दुःख और सुख, अमीरी और गरीबी, हार और जीत, इन सब की यथार्थता धूप और छांह से अधिक नहीं। फिर कोई भी वस्तु अनश्वर है ?

'मैं सच कहता हूँ शान्ता, यहां केवल प्रेम ही अनश्वर है।'—एक दिन उसने कहा था।

'कैसे ?' शान्ता ने चाय के प्याले को मेज़ पर रख और दाईं कुहनी को मेज़ पर टेक कर, हथेली पर ठुड्ढी को सहारा देते हुए पूछा था।

'कैसे !' चाय का एक घूँट भर कर उसने कहा—'संसार केवल प्रेम के सहारे जीवित है। सृष्टि की रचना और उसके अस्तित्व का प्रेम ही कारण है। जीवन के प्रारम्भ से विरोधी शक्तियों में संघर्ष होता रहा है। जीवन और मृत्यु, सत्य और असत्य, प्रेम और घृणा, राम रावण युद्ध, अनादि काल से चला आया है और प्रलय-पर्यन्त चलता रहेगा।'

'और जीत किस की होगी !'

'निस्सन्देह राम की।

'आप जरूरत से ज्यादा आशावादी हैं।'

'आशावादिता निन्दनीय नहीं।

'यथार्थता भी नहीं।'

'तुम कहना क्या चाहती हो ?'

'मैं यह कहती हूँ कि राम-रावण-युद्ध में विजय सदा राम

ही की नहीं हो सकती। प्रेम संभवतः एक सुन्दर स्वप्न हो, किन्तु जागरण के पश्चात् स्वप्न टूट जाता है और सौंदर्य लुप्त हो जाता है।'

'लेकिन……।'

'पापा आ गये……।'

'कहो राकेश ! कब आये ?' पापा ने कमरे में प्रविष्ट होते हुए पूछा। वे सदैव ऐसे ही अवसर पर कमरे में प्रवेश करते। जब वे दोनों इस विषय पर तर्क-वितर्क करते, तो न जाने वे कहाँ से टपक पड़ते, जैसे दरवाज़े के बाहर खड़े उनकी बातें सुन रहे हों। उसे उन का आना खटकता, किन्तु वह कर भी क्या सकता था ? आखिर उनका घर था, उन की बेटी थी। स्वयं वह एक पराया व्यक्ति था। पराया ! क्या जो व्यक्ति उन से इतना परिचित था, अब तक पराया ही था ? वह बहुधा उनके घर आता, उनके दुःख-सुख में सम्मिलित होता, उनको अपना समझता। उनके घर को ? यहाँ सन्देह में पड़ जाता।

क्या वे भी उसे अपना समझते थे ? यह बात अभी सन्दिग्ध थी। वह अब तक उन लोगों को समझ नहीं सका था। वे उस से प्रेम करते हैं या घृणा ? कई बार वे उस से बड़ा स्नेह प्रकट करते। उसे प्रत्येक समारोह पर आमन्त्रित करते। दूसरों से परिचय कराते समय मम्मी कहतीं, 'यह हमारा ही बेटा है।' पापा कहते—'बेटे से भी बढ़ कर है।' परन्तु अगले दिन उसे अनुभव होता कि वे शान्ता के मम्मी और पापा हैं, उसके नहीं। वे उस से घृणा नहीं करते थे, और न प्रेम ही। और शान्ता ? उसे तो वह आज तक नहीं समझ सका था। आखिर वह क्या है ? क्या चाहती है ? कितनी लावण्यमयी थी वह ! कितनी आकर्षक और कितनी मोहक…! उस से

बात करते समय संगीतमय निर्झरिणी प्रत्यक्ष हो उठती। उस कीमुस्कराहट देख कली का खिलना याद आ जाता। उस के कपोल अरुण गुलाबों को भी लज्जित करते। उसकी आँखें हरिणी की आँखों से भी अधिक सुन्दर थीं।

परन्तु उसका हृदय?

उसका हृदय एक पहेली था, समझने की न समझाने की। वह उस से इस प्रकार घुलमिल कर बातें करती जैसे इस विशाल संसार में वही एक-मात्र उसका साथी हो। और जब वह उस से उदासीनता दिखाती, तो ऐसा मालूम होता कि दोनों एक दूसरे की आकृति से भी परिचित नहीं। कभी-कभी तो वह घण्टों उससे हर विषय पर विवाद करती। प्रेम के गहन विषय पर भी। जब वह कभी-कभी उससे एकान्त में बात करने का प्रयत्न करता वह मुँह फेर लेती। जब वह उसे बुलाता, तो उत्तर देने की बजाय पुकारती—

'मम्मी! यहाँ आओ, राकेश बाबू आये हैं।'

राकेश बाबू! उस का हृदय छलनी हो जाता। क्या वह उसे राकेश न कह सकती थी? क्या मम्मी को न पुकार कर वह स्वयं वहां न आ सकती थी? मम्मी उत्तर में कहतीं—

'राकेश जी! ऊपर आ जाइये।'

और उसे अनिच्छा से ऊपर जाना पड़ता।

लौटते समय मार्ग में वह उस के व्यवहार पर सोच-विचार करता। आखिर यह सब क्यों? कभी तो वह उससे इतनी घुल मिल जाती है और कभी बात तक नहीं करती। क्या वह केवल मन बहलाने के लिये उस से बातें करती है अथवा उसका हृदय टटोलती है? परन्तु उस का हृदय तो शीशे के समान निर्मल है। और वह है भी किसका? सब

तो है नहीं जो सब को काट कर बाँटा जा सके। वह तो केवल एक ही को दिया जा सकता था और उस 'एक' का चुनाव वह कर चुका था। परन्तु क्या भेंट स्वीकृत हो चुकी थी ? हो सकता है कि वह सुन्दर नहीं। वह वहाँ आकर शीशे के सम्मुख बैठता और स्वयं ही अपने आप पर मर मिटता। हृदय से आवाज़ आती,

'कभी अपनी अदा भी तूने आईने में देखी है ?' और वह इस पद को गुनगुनाने लगता।

दरवाजे पर दस्तक हुई।

'कौन ?'

'पोस्टमैन।'

उसने जल्दी में पत्र खोला। फिर वही पत्र ! 'तुम्हारी अपनी सुदर्शन।'

'न जाने तुम क्यों नाराज़ हो, राकेश ? मम्मी को संदेह है कि शायद मैंने तुम्हारा दिल दुखाने की कोई बात की है। मम्मी मेरी बातों को सत्य नहीं मानतीं। तुम आकर मेरी ओर से वकालत तो कर जाओ। राकेश, इतना क्यों सताते हो ? पहले तो सप्ताह में एक बार मिल जाते थे। अब महीने बीत जाते हैं, इधर का रास्ता भी भूल जाते हो। तुम्हें मेरी सौगन्ध, एक बार अवश्य आओ। शनि की शाम को मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगी। घर पर केवल मैं हूँगी और मुन्ना। तुम्हारी अपनी सुदर्शन।'

मैं और मुन्ना ! आप और तुम ! आखिर यह क्या गोरख-धन्धा है ? सुदर्शन क्यों उसके पीछे हाथ धोकर पड़ी है और कैसे विचित्र पत्र लिखती है। पहले पत्र में लिखा था—

'आपके अतिरिक्त मेरा कोई नहीं।' क्या मज़ाक है ! क्या

शेष सब संसार मर गया है ? 'अब आप के अतिरिक्त मन मन्दिर में किसे बिठा सकती हूँ ?' किसी पाषाण-मूर्ति को क्यों नहीं बिठला लेती ? 'हिन्दू लड़कियां जीवन में केवल एक ही व्यक्ति से प्रेम करती हैं ।' और शेष सब से घृणा !

लड़कपन कितना आनन्दमय था । खेल-कूद, हंसी-मज़ाक, न कोई दुख न कोई कष्ट । स्कूल था, मास्टर थे, सहपाठी थे । खूब खाओ, खेलो और पढ़ो । मां बलाएँ लेतीं, पिता जी प्यार करते । अब मम्मी पापा और पापा मम्मी । सुदर्शन और शान्ता, मुन्नी और मुन्ना । क्या वह लड़कपन वापस नहीं आ सकता ? क्या वह बेफिक्री का समय लौट नहीं सकता ? क्या वह अपने दिल को चीरकर बाहर फेंक नहीं सकता ? फिर न वह शान्ता के लिये व्याकुल होगा, न सुदर्शन उस के लिये ।

और शान्ता और सुदर्शन एक दूसरे से परिचित नहीं । उन्हें इस ताने बाने की कोई खबर नहीं । और यदि दोनों को एक दूसरे का पता चल जावे ? क्यों न वह सुदर्शन का पत्र शान्ता को दिखाये ? शायद उसे पढ़ कर उस के दिल के तार हिल जायं, उसके अन्दर तूफान बरपा हो उठे । फिर उस पर मन का भेद प्रकट करना कितना सुगम होगा । यदि सीधे नहीं मानती, उसे दांवपेच से मनाया जाय । जो बात स्त्री आसानी से नहीं मानती, ईर्ष्या की ज्वाला से जल कर मान जाती है । तो क्यों न वह आग लगाये जब कि सब मसाला उस के पास विद्यमान था ।

अगले दिन वह नया सूट पहन, नई सुन्दर टाई बांध और कोट की जेब में सुदर्शन के पत्र डाल कर शान्ता के घर की ओर चला । उसने आग लगाने की सब सामग्री जुटा ली थी । देर तक शीशे के सामने खड़े होकर तसल्ली कर ली थी

कि शान्ता से मुकाबले की पूरी तैयारी है। उसे जो कुछ कहना था, उस का पूरा पूरा रिहर्सल भी कर लिया था। उस ने यह दृढ़ संकल्प कर लिया कि या तो आज शान्ता उस की हो जायेगी, या सदा के लिये उस से छूट जायगी।

द्वार पर 'टाइगर' ने उस का स्वागत किया। उस के नये सूट को उसने खूब सराहा और दोनों अगले पंजे कोट पर जमा कर, उसका मुंह चूमना चाहा। आज जीवन में प्रथम बार उसे 'टाइगर' इतना सुन्दर प्रतीत हुआ। उस ने झुककर, अपनी बाहें उस की गर्दन में डाल कर, उसे छाती से लगाया और उसे चूमा। 'टाइगर' के शरीर में सम्भवतः बिजली की लहर दौड़ गई। प्रेम बिजली की लहरें तो पैदा करता है, कुत्तों में भी! टाइगर चूं चूं करके और भी प्रेम जतलाने लगा और दुम हिला कर नाचने लगा।

'मूर्ख, प्रेम को चरम पर क्यों ले जा रहा है? अपनी मालिकन के लिये भी तो कुछ रहने दे।'

'एँ···एँ·······टी···' उसने उत्तर दिया।

'क्या कहा पेंटी? चल बदज़ात!' वह टाइगर को गले से उतारते हुए आगे बढ़ा।

एक हलकी सी खांसी की आवाज़ उसके कान में पड़ी। उसने इधर-उधर देखा, कोई न था। उसकी दृष्टि ऊपर को उठी। शान्ता ऊपर बरामदे में खड़ी थी।

तो क्या उसने उसे देख लिया? उसकी बातें भी सुन लीं। धत् तेरे की। अब? परन्तु अच्छा ही हुआ। उसके सम्मुख जाने के झमेले से बचकर, इसी प्रकार उस ने अपनी बात कह दी। वह भीतर गया। वहाँ कोई न था। बाईं ओर सीढ़ी थी। वह लपककर ऊपर जा चढ़ा। शान्ता वहाँ न थी।

वह कमरे में प्रविष्ट हुआ। सौंदर्य प्रतिमा, जैसे कोई मूर्ति अजन्ता की गुफाओं से लाकर यहाँ रख दी गई हो। चित्र-कार की कला का उज्ज्वल नमूना। वह वशीभूत हो उसे देखने लगा जैसे पहली ही भेंट हो और इससे पूर्व उसने उसके सौंदर्य को देखा ही न हो।

'कहिये, कैसे चुपचाप बैठी हैं ?'

'आज तो बड़े ठाठ हैं ! किसे क़त्ल करने का विचार है ?

'जो हो जाये।'

'तो बाजार में खड़े होना था।'

'लेकिन कोई नीलामी की बोली देने वाला तो चाहिये।'

'बाजार में उनकी कमी नहीं।'

'यहाँ है ?'

'यहां !' वह आह खींच बोली। 'यहाँ की क्या पूछते हो ?'

वह कुछ छिपा रही थी। उसके मन के भाव उसके मुख पर दीख पड़ते थे। उस पर एक रंग आता एक जाता। अभी रोने का चिन्ह, अभी हंसी का, अभी शोक, अभी हर्ष। किन्तु यह सब क्या और क्यों ? क्या नये नाटक का रिहर्सल कर रही है ? उसने उस से पूछ ही लिया।

'हां, नाटक हो रहा है।' वह बोली।

'कैसा नाटक ?'

'जीवन का।'

'वह तो प्रतिदिन होता रहता है।'

'सच ? तब कोई बात नहीं, राकेश। तुम कई बार ऐसी बातें कह देते हो, जिन से दिल को सांत्वना मिलती है। इसी कारण मैं तुम्हें पसन्द करती हूँ'

'केवल इसी कारण ?'

'तुम तो बाल की खाल निकालते हो। अरे अब तक खड़े ही हो? यदि मैं पूछना भूल गई, तुम बैठना ही भूल गये।' फिर बोली, 'तुम खूब समय पर आये। आज मैं तुम्हें कुछ बतलाना चाहती हूँ।'

'मैंने सोचा था कि मैं बतलाऊँगा।' उसने दिल में कहा। प्रत्यक्ष बोला—

'क्या?'

'मेरे विवाह की तिथि निश्चित हो गई है।'

सदा ही व्यंग का स्वभाव। सगाई हुई नहीं, विवाह निश्चित। चलो यह भी ठीक हुआ, उसने स्वयं ही बात छेड़ दी। उसे दियासलाई दिखलाने की आवश्यकता नहीं पड़ी। वह प्रसन्न था कि उस के ठाठ ने उसे प्रभावित कर दिया। क्या यह उसकी जीत नहीं थी! बोला—

'तिथि की तो कोई ऐसी बात नहीं। क्या पापा और मम्मी मान गये?'

'उन के माने बिना पक्की कैसे हो सकती थी?'

'तो मैं भी अपने पापा और मम्मी को सूचित कर दूं।'

'उन्हें सूचित न भी किया जाये, तो क्या?'

नटखट कहीं की! जानबूझ कर सता रही है। परन्तु वह अपनी विजय पर विह्वल हो रहा था। वह उसके मुंह से अपना, वर का, नाम सुनने को व्याकुल था। हंस कर बोला—

'क्या नाम है तुम्हारे दुल्हा का?'

उत्तर सुनने के लिये उसने आँखें बन्द कर लीं ताकि उसके कान आनन्द उठा सकें और उस सूचना को हृदय तक ले जा सकें, जहाँ से खून के साथ वह सूचना शरीर के अंग-अंग में पहुँच सके और उसका समस्त शरीर आनन्द विह्वल हो उठे।

'कैप्टेन किशोर।'

'कौन किशोर ?' उसने आँखें खोल, चिल्ला कर कहा।

'कैप्टेन किशोर खन्ना।'

'कैप्टेन किशोर खन्ना !' उस ने वाक्य को दुहराते हुए कहा। वह अपनी सीट पर से उठकर खड़ा हो गया था। उसके शरीर का अणु-अणु कांप रहा था। कानों ने सूचना सुन कर अपना कार्य पूरा किया और दिल ने भी। सूचना शरीर के रोम-रोम में पहुंच चुकी थी। उसका अंग-अंग हिल रहा था आनन्द से नहीं, शोक, विस्मय और बेबसी से।

'किन्तु तुमने मुझे पहले कभी नहीं बताया।' वह दाँत पीसते हुआ बोला।

'तुमने पूछा ही कब था ?' उसने गम्भीरता से उत्तर दिया।

'मैंने तो आज भी नहीं पूछा।'

'इसीलिये बतला रही हूं।' उस ने दीवार से लटके हुए मीरा के चित्र को देखते हुए कहा।

'दगाबाज़ ! धोखेबाज़ ! मक्कार !' वह रोष से काँपता हुआ बोला।

'रुक क्यों गये ?'

वह मुड़ा और तेज़ी से छलांगें मारता नीचे उतरने लगा।

'राकेश ! राकेश ! तुम्हें क्या हो गया राकेश ? ज़रा रुको। सुनो, राकेश ! रा···के···श···।'

किन्तु वह दूर जा चुका था।

× × × ×

वह विवाह में सम्मिलित न होना चाहता था परन्तु पापा और मम्मी क्यों मानने लगे। उस के बिना सब प्रबन्ध कौन करेगा ? वे दोनों उस के पास गये और उसे विवश करके घर

ले गये। सारा प्रबन्ध उसके सिर था। बारात के ठहराने से लेकर स्वागत-सत्कार का सारा दायित्व उसे ही निभाना पड़ा। सम्बन्धी इत्यादि उसे कार्य करता देख विस्मित हो जाते, आखिर यह कौन व्यक्ति है? इतना श्रम करने की इसे क्या आवश्यकता है? उन्होंने शान्ता के पिता से पूछा कि यह लड़का कौन है?

'मेरा धर्मपुत्र।'

जब डोली को रवाना करके घर लौटा, तो उसका दिल बैठ रहा था। आज उसे पहली बार शान्ता को खो देने का दुःख हुआ। आज उसकी आँखों के सामने कैप्टेन किशोर खन्ना मिस शान्ता टण्डन को अपने साथ ले गया। दूर, उससे दूर, सदा के लिये दूर। उसके साथ सब आशाएँ भी गईं। अब जीवन में रखा ही क्या था? यह उसकी घोर पराजय थी। इसने जीवन की धारा ही पलट दी। यदि वह उस की हो जाती, तो वह जीवन में क्या कुछ नहीं कर सकता था? उसे प्रसन्न करने के लिये वह कठिन से कठिन कार्य कर सकता था अब उसे किसे प्रसन्न करना था? अब तो वह साधारण व्यक्तियों के समान जीवन-समुद्र में बहता जायेगा। किन्तु अपनी नाव का मल्लाह नहीं होगा। उसे लहरों के हवाले कर देगा। वे उसे जहाँ चाहें, बहा ले जायें। उसने भावी जीवन के विषय में कितने रंगीन और सुन्दर स्वप्न देखे थे। किन्तु ये स्वप्न ही रहे। अब वह उदास और खोया हुआ रहता। न उसे कपड़े पहनने में आनन्द आता न खाने में, न काम में, न आराम में। वह कमरे में लेटा सिगरेटें फूंकता रहता।

× × ×

एक दिन कमरा खुला। सुन्दर वस्त्र धारण किये शान्ता

प्रविष्ट हुई, किसी और समय वह हर्ष से नाचने लगता। परन्तु आज वह हिला तक नहीं।

'स्त्री के आने पर उसका खड़े होकर स्वागत न करना शिष्टाचार के विरुद्ध नहीं ?'

'मैं इसके लिये आप से क्षमा चाहता हूँ।' उसने दीवार की ओर ताकते हुए कहा।

'कारण ?'

'तबीयत ठीक नहीं।'

,क्यों ?' वह कुर्सी पर बैठती हुई बोली, 'ज्वर तो नहीं? जरा देखूँ तो हाथ।' और उसने अपना हाथ बढ़ाया।

किन्तु राकेश ने अपना हाथ पीछे हटा लिया और बोला—'कुछ नहीं। अपने आप ठीक हो जायेगा। और फिर यह एक दिन की बात नहीं।' उसने पूर्ववत् दीवार की ओर ताकते हुए कहा।

वह हैरान थी कि जब वह साधारण वस्त्र पहन कर आती, तो वह उससे कितना प्रेम जतलाता और आज यह सुन्दर वेश-भूषा उसे आकर्षित नहीं कर रही। आज वह उस पर रोब जमाने आई थी, ससुराल के ठाठ दिखाने, सास-ससुर की बातें बताने, लेकिन यह सत्कार !

. कुछ दिनों के पश्चात् वह फिर आई। आज वह ठीक था, बाल भी संवारे हुए थे। वह गीत गुनगुना रहा था।

'आज तो बहुत प्रसन्न दिख रहे हैं ?' उसने अन्दर घुसते हुए कहा।

'हमने प्रसन्नता का क्या बिगाड़ा है, जो हमसे रूठी रहे?' उसने मुस्करा कर उत्तर दिया।

'तो इसका मतलब है कि अब प्रसन्नता से मित्रता है ?'

'मैं विवाह कर रहा हूँ।'

'विवाह ? किस से ?' वह विस्मयपूर्वक बोली।

'लड़की से और क्या बँदरिया से !'

'मैंने तो यही समझा था। किन्तु कौन है वह लड़की ?'

'अच्छे घराने की है, धोबियों की नहीं।'

'कौन सा घराना है वह ?'

'आप से कुछ कम है, परन्तु, खैर, लड़की तो अच्छी है।'

'आप बतायेंगे नहीं ?'

'क्यों नहीं। बड़ा सुन्दर नाम है।'

'क्या ?'

'सुदर्शन।'

'कौन सुदर्शन ?'

'सुदर्शन खोसला।'

'खोसला ! आप उससे कदापि विवाह नहीं कर सकते।'

'परन्तु आप भूल रही हैं कि विवाह मेरा है, आपका नहीं।'

'वह लड़की तुम्हारे बिलकुल योग्य नहीं, राकेश !' वह चिल्ला कर बोली।

वह हैरत में पड़ गया। आखिर यह क्या बात है ? क्या यह ईर्ष्या की भड़कती हुई ज्वाला है या प्रेम की सोई हुई चिनगारी ? क्या मेरे हित के लिये कह रही है या सुदर्शन के अहित के लिये ? उसने उसका हृदय टटोला।

'देखिये आप......'

'मुझे 'आप' कहने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं, राकेश !' वह टोक कर बोली।

वह आंख फाड़-फाड़ कर उसकी ओर देखने लगा, सम्भवतः इसी प्रकार उसके हृदय की गहराइयों तक पहुँच सके।

'अच्छा, तुम ही सही।' वह उस के गम्भीर भाव से प्रभावित होकर बोला। 'शान्ता, यह तो तुम जानती हो कि मैं विवाह तो करूँगा ही। सुदर्शन हो अथवा कुदर्शन, लीला हो या लैला। नाम ही का तो अन्तर होगा, और तो कुछ अन्तर नहीं।'

'किन्तु तुमने सुदर्शन को चुना है, क्या दुनिया मर गई है?'

'मेरे लिए ज़िन्दा भी नहीं।' वह आह खींच कर बोला। 'लेकिन, तुमने सुदर्शन को कब देखा?'

'अपने विवाह पर।'

'उसमें क्या ऐसी बात थी जो तुमने उसे पसंद नहीं किया?'

'सब बातें बताई नहीं जातीं, परन्तु तुम सुदर्शन से शादी नहीं कर सकते।'

'तो किस से कर सकता हूँ?'

'किसी से नहीं।' उस के मुँह से सहसा निकल गया। फिर झेंप कर बोली—

'मेरा मतलब है कि मैं कोई अच्छी लड़की तलाश करूँगी।'

उसकी झेंप ने उसे परेशानी में और गहरे सोच में डाल दिया। शान्ता खिड़की के पास जाकर खड़ी हो गई, जहाँ से वह उसका मुँह न देख सकता था। वह शायद वहाँ खड़ी अपने आप से उलझ रही थी। लेकिन क्यों? उसे अब उलझने की जरूरत ही क्या थी। अब उस का उस से क्या सम्बन्ध था? उसका दिल तो वह तोड़ चुकी थी। शायद उसने सुदर्शन को नहीं देखा। हो सकता है, देखा हो। परन्तु विवाह के अवसर पर, थोड़े समय की भेंट में उसने क्या देखा होगा? तो फिर यह सब क्यों? वह खिड़की के समीप जाकर, उसके पास खड़ा हो गया और बोला—

'शान्ता !'

'क्या ?' उस ने उसी तरह बाहर देखते हुए पूछा।

'मेरी ओर देखो।'

उसने गर्दन घुमायी। उसकी आँखों में आँसू तैर रहे थे।

'शान्ता, यह सब क्या ?' उसने विस्मित हो कर पूछा।

'राकेश !' वह उससे लिपट गई। बांध टूट चुका था। आंसुओं की धारा फूट निकली।

'शान्ता, शायद तुम्हारी तबीयत खराब है। आओ सोफे पर लेट जाओ।'

'राकेश, मुझे क्षमा करो।' वह रुँधे गले से बोली।

'मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा।' उसे बांहों में थामते हुए राकेश ने कहा।

'राकेश, तुम मेरे हो। मैं तुम्हें किसी पराये के सिपुर्द नहीं कर सकती।'

'और स्वयं हो गई हो ?'

'नहीं, कर दी गई हूँ। स्वयं पर मेरा तो बस नहीं था, तुम्हारा तो है। बचपन की सगाई थी। बीच में कई सम्बन्धी पड़ते थे। वह सम्बन्ध केवल मेरी मौत ही से टूट सकता था। परन्तु तुम्हारे सामने तो ऐसी कोई अड़चन नहीं।'

'तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं, शान्ता !' वह बोला। 'चलो सोफे पर बैठो। मैं तुम्हें पानी पिलाता हूँ।'

उसने उसे सोफे पर बिठाया, फिर मेज पर पड़ी शीशे की सुराही में से, गिलास में पानी डाला और बोला—

'लो, पानी पियो।'

जब वह पी चुकी, तो वह बोला—'तुम अब क्या चाहती हो ?'

"मैं !' जैसे बड़ा विचित्र प्रश्न हो। 'कुछ भी तो नहीं।' उसका मनोभाव बदल चुका था। 'तुम्हें किसने बतलाया कि मैं कुछ चाहती हूँ ?' और वह उठ कर खड़ी हो गई और 'नमस्ते' कह कर नजरों से ओझल हो गई।

उसके लिये यह एक पहेली थी। क्या यह सब स्वप्न था ? नहीं ! स्वप्न कैसे ? वह कमरे की प्रत्येक वस्तु को भली भाँति देख रहा था। वह वास्तव में जग रहा था। शान्ता ? वह अभी-अभी वहां से उठ कर गई थी, कुछ कह कर, हृदय का भेद खोल कर, प्यार की बात करके और उसके लिये और भी जटिल समस्या पैदा करके। वह बिजली बनकर आई और बिजली की तरह तड़प गई, उसी प्रकार बेचैन, व्याकुल विक्षुब्ध और अन्त में बिजली ही के समान कड़क कर गिरी। परन्तु पता नहीं जलाने के लिए या जिलाने के लिये। उसके शब्द अब भी उसके कानों में गूंज रहे थे, 'राकेश, तुम मेरे हो, मैं तुम्हें किसी पराये के सिपुर्द नहीं कर सकती।' परन्तु जब उसने पूछा—'तुम अब क्या चाहती हो ?' 'मैं ? कुछ भी तो नहीं। किसने बताया कि मैं कुछ चाहती हूँ ?'

उसने सुदर्शन से विवाह नहीं किया, केवल दया से द्रवित होकर। वह उसका जीवन नष्ट नहीं करना चाहता था। उसके उष्ण हृदय में अपने हृदय की ठण्डक नहीं भरना चाहता था। उसके सुनहले सपनों को तोड़ना, उसकी आकांक्षाओं को तहस-नहस करना उसका मंशा न था। केवल शान्ता को सताने के लिये वह उससे विवाह रचना चाहता था। अब यह इच्छा भी मर गई। परन्तु उसके अन्दर सुलगने वाली

प्रेम ज्वाला ! यदि वह उसे जला कर राख कर दे ? तो फिर क्या जीवन में जलना और सड़ना ही उसके भाग्य में बदा है ? वह तो सुना करता था कि मानव चोला बार-बार नहीं मिला करता। यह तो बड़ी कठिनाई से मिलता है। तो वह इसे यों ही गंवा देगा !

इस विचार ने उसे व्याकुल कर दिया। हर समय उसे यही बात सताती। हर समय उसके सामने एक ही प्रश्न आता, यह प्रेमज्वाला। गर्मी ने उस की जलन को और भी उग्र कर दिया। शान्ता ससुराल चली गई थी। जीवन भार प्रतीत हो रहा था। किसी से हृदय की पीड़ा कह भी नहीं सकता था। इस से मनोवेदना और भी तेज़ हो गयी।

वह पहाड़ पर चला गया, अग्नि को शान्त करने। धनी लोग भी वहाँ जाते थे। वे भी आग ठण्डा करने जाते थे, वासना की आग। दरिद्र पहाड़ी लोग चांदी के कुछ सिक्कों के बदले, अपनी लड़कियों और स्त्रियों के सतीत्व का उन से सौदा करते।

एक दिन---

शान्ता की स्मृति तड़प बन कर उसे सताने लगी। वह व्याकुल हो उठा। प्रेम ज्वाला भड़क कर उसे जलाने लगी। आज यह ज्वाला उसे अवश्य भस्मसात् कर देगी। उसका और काम ही क्या है ! तो ज्वाला का काम केवल जलाना है ? परन्तु वह अन्धकार में प्रकाश भी तो पैदा करती है। वह चिल्ला उठा—प्रकाश ! प्रेम ज्वाला विचित्र प्रकार से चमक उठी। वह आनन्द से विह्वल हो उठा। उस पर पागलपन छा गया। अब यहीं उसका घर बनेगा। यही पहाड़ी लोग उसके पड़ोसी होंगे। उनका दुःख उसका दुःख होगा, उनका

सुख उसका सुख होगा। वह उन्हें पढ़ायेगा, उनकी दवा-दारू करेगा। उन्हें साहूकार, ज़मींदार, सेठ और मतवाले बाबुओं के पंजे से बचायेगा। उन्हें नये-जीवन से अनुप्राणित करेगा। आत्मग्लानि दूर कर उनमें आत्मगौरव उत्पन्न करेगा। पशुओं को मानव बनायेगा। क्या यह कोई साधारण बात है? पशु से मानव! फिर विवाह की क्या आवश्यकता? बच्चों की क्या ज़रूरत? उनके बच्चे उसके बच्चे होंगे।

'बाबूजी, ओ बाबूजी!' उसके कान में बन्तू लुहार की आवाज़ पड़ी। उसकी आंख खुल गई।

'बाबूजी, यहां चट्टान पर सोये पड़े हो? वर्षा से सब कपड़े भीग गये हैं। हम कब से आपको ढूंढ़ रहे थे।'

'क्यों?'

'बिटिया को ज्वर हो गया है।'

'बिटिया को ज्वर?' उसने उठते हुए पूछा।

'हां। लेकिन, बाबूजी, आप सो रहे थे।'

'हां, नहीं। स्वप्न देख रहा था।'

'किस का?'

"बिटिया का।"

और वह दुर्गम, पथरीली पहाड़ की पगडंडी पर पांव रखता हुआ गांव की ओर चला।

डलहौजी तक

२

डलहौजी तक

मोटर-लारी का क्लीनर एक विशेष व्यक्तित्व का स्वामी था। वह सब से उलझता, लड़ता, झगड़ता। समय का परिवर्तन देखिए कि जो क्लीनर यात्रियों से कुछ कहते हुए झिझकते और ड्राइवर से थर्राते थे, आज न केवल ड्राइवर, बल्कि यात्रियों पर भी आतंक जमाते हैं। कदाचित भारतवर्ष के दूसरे भागों में यह बात न हो, परन्तु पंजाब का क्लीनर तो राजनीतिक परिवर्तन को समझ गया है और उसका व्यक्तित्व पूर्णरूप से विकसित हो गया है। स्वतन्त्रता के पश्चात् जीवन के मूल्यों के परिवर्तन से वस्तुओं की कदरें भी बदल गई हैं। जिस लारी में किसी समय बीस अथवा अधिक से अधिक पच्चीस यात्री बैठते थे, वहां आज ड्राइवर और क्लीनर के अतिरिक्त बत्तीस यात्री बैठाए जाते हैं। जिस सीट पर कठिनता से सात व्यक्ति बैठ सकें, वहाँ दस को बैठने के लिये विवश किया जाता है। क्लीनर के स्थान पर कोई नहीं बैठ सकता, विशेष कर जिसे अपना मान प्यारा है। वह वहाँ

बैठने के बदले मोटर की छत पर बैठना पसन्द करेगा। जब कोई यात्री स्थान की कमी का उलाहना देता, तो क्लीनर अपने कर्कश स्वर में चीखता—

'आपको यहाँ बैठने के लिए किसने मजबूर किया है ?'

'मेरे काम ने।'

'तो थोड़ा आगे को सरक जाइये। यहाँ दस आदमियों की जगह है। आप अभी आठ हैं।'

'परन्तु यहाँ तो सात भी बड़ी कठिनाई से बैठ सकते हैं।'

'यह जाकर सरकार से कहो जिसने बस पास की है।'

'सरकार ऐसे कब सुनती है ? चुनाव के बाद शायद कुछ अन्तर पड़े।'

दो सवारियाँ और आ जाती हैं। क्लीनर बोला—'यात्रियों को इतनी मार होती है कि जब तक उन से कठोरता का व्यवहार न किया जाय, मानते ही नहीं। लालाजी, आपको सुनाई नहीं देता ? बहरे हैं ? सरदारजी, कुछ ज्यादा दाम नहीं दिये जो इतनी जगह घेरे बैठे हैं।'

सरदारजी—'लेकिन जगह ही नहीं, कहाँ सरकूँ ?'

क्लीनर—'सरदारजी, क्लीनर मैं हूँ, आप नहीं। मैं जानता हूँ कितनी जगह है।' फिर एक स्त्री को सम्बोधित करके बोला, 'बच्चे को गोद में लेकर बैठ। तूने एक टिकिट के पैसे दिये हैं।'

'तेरी अक़ल तो ठिकाने है ? मुआ कहीं का ! बच्चे के आधे टिकिट के पैसे ले लिए और कहता है एक ही टिकिट लिया है।'

(टिकिट दिखाते हुए) 'यह तेरा सर है मुए ?'

'लेकिन बच्चे को गोद में ही बिठाना होगा।'

'तेरी दाढ़ी पर क्यों न बिठाऊँ, मुआ कहीं का ! जा, नहीं बिठाती। तेरे बाप की गाड़ी है न। झुलसे ने पैसे ले लिये पूरे और अब बैठने भी नहीं देगा।'

पूरी लारी में केवल यह एक सिख महिला थी जिस ने क्लीनर की चुनौती को स्वीकार किया और उसे पराजित होने फिर विवश किया। परन्तु क्लीनर ने अन्य व्यक्तियों पर क्रोध उतारा। एक गांव के मालगुजार पर तो वह इस प्रकार झपटा जैसे बाज़ कबूतर पर।

'अरे गधे के बच्चे ! तू अपनी मां गठरी को छत पर क्यों नहीं रखता ?'

भला कोई पूछे मां को छत पर कैसे रखे ? और फिर एक भंगिन से उलझ पड़ा, जो जलेबी से रोटी खा रही थी और अपने पति को भी खिला रही थी।

'अरी तू ठीक होकर बैठ तो, टांगें पसारे बैठी है जैसे बाप का घर हो।'

'चुप रह ए मुशमुण्डे, नहीं तो दाढ़ी नोच लूंगी। कल तक भीख मांगता था, आज कलन्डर बना हुआ है। भला हुआ कि मेरे पास इस समय झाड़ू नहीं है, नहीं तो तेरा मुंह बिगाड़ देती। मूजी कहीं का।'

'बकवास बन्द कर साली कमीनी।'

'कमीनी तेरी मां, तेरी बहन, हरामी, कुत्ता। खबरदार अगर अब मुंह खोला। क्या हुआ मेरे पास झाड़ू नहीं है, सिलीपर तो है।'

बात ठिकाने लगी। सरदारजी पर यह बात पूर्णरूप से

स्पष्ट हो गई कि भंगिन सिलीपर का प्रयोग करने से रुकेगी नहीं।

उन्होंने अपना ध्यान उधर से हटा लिया। परन्तु वे जानते थे कि अंग्रेज का राज समाप्त हो चुका है, अब जनता का राज है। वह स्वयं को यदि जनता नहीं, तो जनता का एक व्यक्ति अवश्य मानते थे। इस नाते से उन्होंने अपना शासन बनाए रखने का निश्चय कर रखा था। यदि कोई यात्री छत के ऊपर अपना बिस्तर या ट्रंक या गठरी खोल कर कोई चीज निकालता, तो सरदारजी की क्रुद्ध दृष्टि से बच नहीं सकता था।

'क्यों श्रीमान् जी, आप किसकी आज्ञा से ऊपर छत पर चढ़े हैं? अगर कोई चीज खो गई, तो फिर मुझे जिम्मेदार ठहरायेंगे।'

'यह तो मेरा ट्रंक है।'

'मैं क्या जानूं किसका है! फिर आप सरीखे कहेंगे, मेरा यह गुम गया, मेरा वह गुम गया।'

'अरे छोड़ यार– नहीं कहते···'

'नहीं कहते! आया है इतना कहने वाला।'

'सरदारजी, अब तो चार बज चुके हैं।'

'चार का बच्चा, उल्लू का पट्ठा।'

'ज़बान सम्हाल कर बोल, साले कमीने, नहीं तो दाढ़ी के बाल नोंच लूंगा।'

'उतर नीचे तेरी···'

तब ड्राइवर ने एक बड़ी गाली सरदारजी को दी और

बोला—'शोर बन्द करता है या नहीं। अब बकवास की तो जमीन में जिन्दा गाड़ दूंगा।'

ड्राइवर की इस धमकी पर वह यह विचार करने पर विवश हुआ कि सचमुच न गाड़ दिया जाऊं। फिर गाड़ी में सवारियां कौन बिठायेगा? टिकिट कौन काटेगा?

और······और·······

'अरे समय हो गया, गाड़ी चलाओ। मैनेजर ने चिल्ला कर कहा।

ड्राइवर ने हार्न दिया और गाड़ी को चलाना चाहा, परन्तु वह भी स्वतन्त्रता का अभिप्राय समझ चुकी थी। सब कुछ करो, काम मत करो।

तीन घण्टे के पश्चात पठानकोट पहुँचे। आज के और सन् १९४७ के पठानकोट में कितना अन्तर है! तब यहाँ जन-संख्या कम थी। आज बहुत है। तब आपको सज्जनों से काम पड़ता था। आज सज्जनता और मनुष्यता तो नहीं, इमारतों लकड़ी की अधिकता है। जिस सड़क पर दिन में भी उल्लू बोलते थे, अब वहां रात को भी चहल पहल रहती है।

जन-संख्या की अधिकता ने चीजों के भाव बढ़ा रखे हैं। मालथस कहता था कि यदि लोग बच्चों की उपज कम न करेंगे, तो युद्ध, बीमारी और बेकारी जन-संख्या को कम करेगी। कितनी मिथ्या बात है! क्या आजकल युद्ध और रोग नहीं होते? मनुष्य के इतिहास में न इतने भयानक युद्ध हुए और न इतने रोग फैले। परन्तु जन-संख्या पर क्या प्रभाव पड़ा? यही न, कि आगे से बढ़ गई है और बढ़ने की धमकी

दे रही है। नहीं तो ढांगू रोड पर मनुष्यों की इतनी अधिकता का क्या अर्थ ?

जन-संख्या जिस तीव्रता से बढ़ती जा रही है, प्रेम उसी अनुपात से घटता जा रहा है। दूर क्यों जाइये। लाला जुगाली राम को देखिये। आप मेरे चिर-परिचित मित्र हैं। सन् १९४७ में जब आप पाकिस्तान से भाग कर आए थे, तो मैंने उन्हें शरण दी थी। केवल घर ही नहीं, बिछौने भी दिये, कपड़े, बर्तन और रुपया भी। कई दिन तक भोजन मेरे यहाँ करते रहे। आपने फिर लकड़ी का व्यापार आरम्भ किया। धोखा देने और झूठ बोलने में प्रवीण थे। आजकल और क्या चाहिये ? आप का काम खूब चमका। बैंक का एकाउन्ट तथा तोंद साथ-साथ बढ़ती गयी। तीन वर्ष के पश्चात् बाजार में पोस्ट आफिस के सामने टक्कर हुई।

'कहिए जुगालीराम जी!'

'नमस्ते जी,···नमस्ते,···नमस्ते'···आप मेरी ओर देखते हुए बोले।

मुझे भय लगा कि नमस्ते की गरदान लगाने लग जायं। मैंने टोका, 'आपने कदाचित पहचाना नहीं ?'

'नहीं, हाँ, पहचाना क्यों नहीं ? ही, ही, ही, परन्तु आपका नाम भूल रहा हूं।'

'आपने बड़ा अच्छा किया, नाम भूल गए। बड़ी आफत से बच गए।'

'याद आ गया। आप मिस्टर कपूर हैं न ?'

'आप लगभग पास पहुँच गये।'

'तो खन्ना हैं।'

'अजी मैं खन्ना गन्ना कुछ नहीं, मैं तो मैं हूँ। मेरे पास आप पाकिस्तान के पश्चात······'

'अरे, अरे आप! कितनी भूल हुई। मेरी स्मरणशक्ति बहुत क्षीण हो गई है।' फिर इधर उधर की बातें करने लगे और मुझ से मेरे काम के विषय में पूछने लगे। कहाँ रहे? क्यों रहे? परन्तु इस बात का विशेष ध्यान रखा कि मेरे यहाँ आने के विषय में कुछ नहीं पूछा। न स्थान के विषय में, न भोजन के।

'बच्चे तो ठीक हैं?'

'मेरे या आप के?'

'आप के?'

'अभी तक तो ठीक थे।' और धीरे से बोला, 'यदि श्रीमान् की बद दुआ न लग गई हो?'

'क्या दवाई खाते हैं?' आपने पूछा।

'नहीं, मैं कह रहा था आप की दुआ है।'

'ईश्वर की कृपा है, ही, ही, ही।' फिर घड़ी देखकर बोले, 'अरे मुझे कितने आवश्यक काम पर जाना है। अच्छा, फिर मिलूँगा, और यह जा, वह जा, निगाह से ओझल हो गये। यह थे लाला जुगालीराम, और हमारी श्रीमती ने कहा था कि जाते ही उनके पास ठहरना, जिससे भोजन का कष्ट न हो। इस घटना पर ध्यान देते-देते न जाने मेरे पांव किस ओर उठ गए और मैं कितनी दूरी पार कर गया। तब मुझे ध्यान आया कि पेट खाली है और उस ने कोई अपराध भी नहीं किया कि उसे अकारण ही दण्ड दिया जाय। मिठाई की दूकान पर पहुँचा, वहां देखा तो जुगालीराम जी बढ़ बढ़ कर मिठाई के दोनों पर हाथ साफ कर रहे हैं।

'आइये, आइये।' मुझे देखकर बोले।

'मुझे आवश्यक काम से जाना है।' मैंने उपहास रूप में कहा।

'और मुझे भी।' वे गम्भीरता से बोले और चल दिये। परन्तु मेरी कल्पना के लिए अच्छी सामग्री छोड़ गए।

संध्या को मैं दीवान रामलाल से मिला। आप न केवल मेरे लाहौर के पुराने मित्र थे, बल्कि झगड़ों के पश्चात् व्यापार में मेरे सहयोगी भी थे। उनकी सज्जनता पर विश्वास करके मैंने सारा काम उन ही पर छोड़ दिया था। आपने बीस हजार कमाकर अपनी जेब में रख लिये। न मुझे उस में से एक पैसा दिया और न कभी देने से इनकार किया। मेरे आग्रह पर इतना ही कहते, 'आपको अविश्वास नहीं होना चाहिये, मेरे पास हुआ या आपके पास, अन्तर ही क्या है?'

'यही कि मेरे पास नहीं।'

'आप तो हँसी करते हैं।'

'किस कमबख्त को हँसी की सूझती है।' मैंने जल कर कहा।

'अरे लड़के ठंडे पानी का गिलास ला।' यह जनवरी के मास की बात है। आज मुझे दो वर्ष के पश्चात् मिले। आधे घण्टे इधर-उधर की बातें करके बोले—

'अच्छा, मुझे एक आदमी से मिलने जाना है।' जैसे मैं आदमी ही नहीं। 'फिर मिलूँगा। आपने खाना तो खा लिया होगा? यहाँ ही खा लिया होता। आपका तो घर है। यदि रात्रि को नहीं, प्रातःकाल अवश्य मिलिए। अच्छा नमस्ते।' और लेन देन के विषय में बात करने का अवसर दिये बिना

चल दिये। इतना पूछने का भी कष्ट नहीं उठाया कि मैं धर्मशाला में ठहरा हुआ हूं या प्लेटफार्म पर। वास्तव में उन्हें आवश्यक कार्य था।

तीसरे मित्र से मिलने गया। ये प्रायः मेरे पास आते थे और महीनों नहीं तो दिनों अवश्य ठहरते थे। बड़े प्रेम से मिले। इधर-उधर की बातों के पश्चात् बोले—

'आप चाय तो पी चुके न ?' और मेरे उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना, बाहर देखते हुए बोले—'देखिये, बड़ी गहरी आंधी आ रही है, कहीं आप घिर न जायं। आप इस से पूर्व ही निकल जाइये।' बात पते की थी। मैं आंधी के पहले ही निकल पड़ा। कदाचित् इसीलिए आँधी ने आने की आवश्यकता नहीं समझी।

× × ×

एक समय था जब पठानकोट से डलहौजी जाने के लिये यात्रियों की बहुत भीड़ हुआ करती थी। अब मार्ग में लारियाँ अधिक हैं और यात्री कम। क्यों ? मैं क्या जानूं, यह तो यात्रियों को ज्ञात होगा। मैं तो इतना जानता हूँ कि सब लोग पहाड़ों में शिमले को अधिक महत्व देते हैं। कदाचित इसका कारण यह है कि वहाँ सरकारी दफ्तर हैं और परमिट इत्यादि भी वहीं मिलते हैं। उच्च अधिकारी वहीं ठहरते हैं। जो लोग किसी समय अंग्रेज़ों के शिमले में ठहरने के विरुद्ध थे, आज शिमले के नीचे उतरने का नाम नहीं लेते। कई वर्षों से नई राजधानी की बातें हो रही हैं और होती रहेंगी। नई राजधानी बने या न बने, डलहौज़ी वाले यह अनुभव कर रहे हैं कि उनके प्रति उदासीनता प्रकट की जा रही है। परिणाम यह है कि यहाँ यात्रियों की बहुत कम भीड़ है और पठानकोट

में आसानी से स्थान मिल सकता है। परन्तु यदि जीवन में केवल आराम ही हो, तो उसमें से जीवन की तड़प जाती रहे। सुख-दुख एक दूसरे से बंधे हुए हैं। ड्राइवर इस गुर को भली-भाँति जानता था, इस कारण उसने संतुलन बनाए रखने का प्रयत्न किया। साढ़े बारह बजे की अपेक्षा वह डेढ़ बजे चला। वह कम्पनी का नौकर था, दास नहीं। और नौकर और दास में कितना अन्तर होता है! अड्डे पर आकर यदि कम्पनी वाले उसे समय पर आने के लिए विवश भी करें, वह उसका बदला मार्ग में निकाल सकता है।

अपने घर के पास आकर उसने लारी रोकी, जैसे कम्पनी की गाड़ी नहीं, घर की कार हो। पूरे आधे घण्टे में लेमन की बोतलें लेकर घर से बाहर निकला, क्योंकि उसकी अपनी दूकान थी और इन बोतलों को रास्ते में बेचना था। श्रीमान्, आजकल केवल वेतन से कहाँ पूरा पड़ता है? कम्पनी वालों को तो इस बात की चिन्ता नहीं, परन्तु उसे तो थी। डेढ़ बजे चक्की-पुल का फाटक बन्द हो जाता है। फिर खुलता नहीं, कम से कम आशा तो यही है। ड्राइवर को सहसा इस बात का ख्याल आया। उसने गाड़ी को पूरी चाल पर छोड़ दिया। कोलतार की जलती हुई सड़क, ऊपर दोपहर का सूर्य, फिर टायर ठहरे रबड़ के, इस पर गुलज़ारीलाल जैसा ड्राइवर। तीन मील ही चले होंगे कि एक विचित्र सी आवाज़ होने लगी जैसे खतरे के समय घण्टी बजती है। पास बैठे शास्त्रीजी बोले, टायर फट गया है। झटके के साथ गाड़ी रुकी, और सब नीचे आए। एक सज्जन ड्राइवर को सम्बोधित करके बोले, 'तुम इतना तेज चलाते हो ऐसी ऋतु में, टायर न फटे तो क्या फटे?'

'आदमी ।' दूसरे ने कहा ।

'क्या विचित्र है ड्राइवर,' ज्ञानीजी बोले ।

'आप अपनी पोथी की चिन्ता कीजिये, ज्ञानीजी !' ड्राइवर तुनक कर बोला । 'और यदि इतना नहीं कर सकते, तो अपनी ज़बान पर लगाम लगाइये ।' यह बात ज्ञानीजी को पसंद आई । वे पेड़ के नीचे जाकर लेट गए । एक सज्जन चश्मा और हैट लगाए अपनी पत्नी के साथ जामुन के पेड़ के नीचे जाकर गप्पें लड़ाने लगे । एक सरदार जी ड्राइवर के पास खड़े होकर टायर बदलने का तमाशा देखने लगे । एक धोती-धारी महाशय को दो पैसे का एक समाचार-पत्र हाथ लग गया । उसको पढ़ने में लग गए । अर्थात् कोई निठल्ला नहीं था सिवा सफेद पगड़ी वाले सरदार साहब के ।

'सरदारजी, आप लुधियाना प्रान्त के निवासी हैं ना ?' मैंने उनसे पूछा ।

'जी ।'

'यदि जालन्धर के होते, तो क्या बिगाड़ लेते ?' मैंने धीरे से पूछा ।

'क्या कहा ?'

'यही कि जालन्धर लुधियाना के पास ही तो है ।' मैंने कहा । उन्होंने मेरी ओर ऐसे देखा जैसे कह रहे हों—

'बात तो ऐसी की जैसे कोई नया आविष्कार किया हो ।'

फाटक वाले सिपाही ने फाटक खोलने से इनकार कर दिया । गुलजारीलाल का नशा हिरन हो गया । सभ्य यात्रियों पर आतङ्क जमाने वाला ड्राइवर एक अनपढ़ सिपाही के आगे घुटने टेकने लगा । मिन्नतों का सारे का सारा कोष

उस ने वहां पन्द्रह मिनट में समाप्त कर दिया। फिर गिड़-गिड़ाने लगा और अन्त में सिपाही के पैरों पर गिर पड़ा। सिपाही यद्यपि लाल वर्दी पहिने था, परन्तु था तो आदमी। और आदमी के पास साधारणतया सहन करने की एक सीमा होती है। गुलजारीलाल ने वह समाप्त करवा दी। तब सिपाही ने गालियों वाली पुस्तक खोली और चुन-चुन कर उसे सुनाने लगा। परन्तु दस मिनिट के पश्चात् उसे कोई आवश्यक कार्य स्मरण हो आया और उस ने गुलजारीलाल से पीछा छुड़ाना ही उचित समझा।

मार्ग में दुनेरा पर गाड़ियाँ साधारणतया ढाई बजे पहुंच जाती हैं और उनको आधा घण्टा विश्राम लेना अत्यन्त आवश्यक होता है। गाड़ी के लिए नहीं, यात्रियों के लिये। मोटरों का बहुत आधिक्य और पेट्रोल की दुर्गन्ध ऐसी मतली उत्पन्न करती है कि आप भविष्य में इस सड़क पर यात्रा न करने की सौगन्ध खा लेते हैं। परन्तु अभी इस ओर रेल और हवाई जहाज ने कृपा नहीं की है, इसलिये इस शपथ को भूल जाना ही उचित समझते हैं। अब गुलजारीलाल को दो घण्टे की यात्रा आधे या अधिक से अधिक एक घण्टे में समाप्त करनी थी। और यात्रा पूरी करने का प्रयत्न होने लगा। एक ओर ऊँचे-ऊँचे पर्वत, दूसरी ओर गहरे खड, पग-पग पर भयानक मोड़। उस ने बड़ी निडरता और तेजी से उन मोड़ों को पार करना आरम्भ कर दिया--न मोड़ पर हार्न देता और न चाल ही धीमी करता।

'मोड़ों की भी परवा नहीं करता,' लालाजी ने घबड़ा कर कहा।

'मनुष्य को जीवन के मोड़ पर भी सावधान रहना चाहिये।' ज्ञानीजी बोले।

'वह तो हम देख लेंगे, परन्तु यहां की अधिक चिन्ता है।' चश्मे वाले सज्जन बोले।

अचानक गाड़ी एक ओर को उलटने लगी।

'गाड़ी उलट जाती, सँभाल कर क्यों नहीं चलाता ?'

'तू क्यों बेकार चिल्ला रहा है ?' गुलजारीलाल ने आंखों को मलते हुए और गाड़ी को सँभालते हुए कहा।

'अरे तुम रात को क्यों नहीं सोते ?'

'तो पियेंगे कैसे ?' दूसरे यात्री ने व्यङ्ग किया।

'परन्तु यहां तो पन्द्रह आदमी खड में चले जाते।'

'शायद यह बच जाता।'

इस प्रकार वह सोता-जागता लेमन की बोतलें बेचता दुनेरा पहुंचा। तीन बजने में दस मिनट शेष थे। यात्रा के हिचकोलों को स्मरण कर रोंगटे खड़े हो जाते थे। थकावट इस बला की थी कि सुस्ताने को अवकाश न मिला, तो कदाचित् जीवित भी न रह सकें। अंग्रेजी समय में यह रेस्ट-हाउस बड़ा सजा रहता था। सुन्दर कुर्सियां बरामदों को सजातीं। कमरे साफ-सुथरे और सजे-सजाए रहते। दूकान पर लेमन और आरेन्ज स्काश, ह्विस्की, बियर रहती। अब केवल लेमन की कुछ बोतलें थीं और इकबाल की यह भविष्यवाणी—

'गुजर गया अब वह दौरे साक़ी कि छुपके पीते थे पीने वाले,' असत्य सिद्ध हो रही थी।

अब तो दौरे साकी भी गुज़र गया और पीने वाले भी चले गए। न कोई मयखाना है, न पीने वाले। अंग्रेज साहिबों का स्थान अब देशी साहबों ने ले लिया है। परन्तु वह तेज़, वह आतंक, और वह शान कहां! वह रौनक, वह वातावरण

अब कहां ? अंग्रेज यदि पैसे अधिक लेते थे, तो व्यय भी उतना ही करते थे। वे जीना जानते थे। वे काम के समय आराम और आराम के समय काम नहीं करते थे। और यदि उनको काम करना आता था, तो आराम करना भी। उन्हें मृत्यु के बाद के सन्दिग्ध जीवन का दुःख नहीं सताता था। वे वर्तमान जीवन को ऊँचा बनाने पर विश्वास करते थे। उनमें बल-बूता था। वे सुन्दर ऋतुओं को भारतवासियों के समान सोकर नहीं बिताते थे। उन्हीं के कारण पहाड़ों की छातियाँ चीर कर उन पर सड़कों के जाल बिछ गए। जंगल में मंगल होने लगा और लोग प्रकृति के सौन्दर्य से आनन्द उठाने लगे। उन्हीं की बनाई हुई बहिश्तों में हमारे कवि और कहानीकार झरनों के राग और पुष्पों की सुगन्ध से उन्मत्त होते हैं। और उनके जाते ही पञ्जाब का विख्यात पर्वतीय स्टेशन उजाड़ बन गया। नये अधिकारियों को राजनीतिक चालों और गांठ जोड़ से अवकाश मिले, तो प्रकृति की सुन्दरता की ओर ध्यान दें। अँग्रेज दोनों कार्य एक ही साथ करते थे और उत्तम ढङ्ग से। अब एक ही काम पूरा किया जा रहा है और वह भी भोंडेपन से 'इन्क़िलाबात हैं जमाने के।'

विचार हुआ कि भीतर जाकर स्नान-गृह में हाथ-मुँह धो लें। परन्तु विफल, पानी नहीं था। फिर बाहर ही चलो। इतने में हार्न सुनाई दिया और मैं मोटर की ओर चला। मोटर चल चुकी थी। मैं फाटक के पास खड़ा हो गया। केवल एक ही मोटर शेष थी। मैं अकड़ कर खड़ा हो गया कि स्वयं ही रोकेगा। परन्तु ज्यों ही मोटर मेरे पास आई, रुकने का नाम ही नहीं। यह तो कोई अन्य ड्राइवर था! मेरे होश गुम हो गए। गुलजारीलाल जा चुका था। और अब

कोई मोटर शेष नहीं थी। मैं चुप रह गया। सहानुभूति प्रकट करने वालों की कमी नहीं थी। शीघ्र ही एक समूह जमा हो गया।

'आपका टिकट कहाँ है ?' एक सरदार जी बोले।

'यह रहा।'

'यह तो दो सौ बहत्तर नम्बर की गाड़ी है। गुलजारी-लाल भी बड़ा हरामी है।' पुलिस का सिपाही बोला। 'उसके साथ इतनी होती है, फिर भी नहीं मानता।'

'उसके विरुद्ध रिपोर्ट करनी चाहिये।'

'आपका सामान भी उसी में था ?'

'यह तो प्रकट है। सामान सिर पर तो उठाए नहीं फिरता था।'

'बहुत बुरी बात है।'

बातचीत होती रही। मैंने सोचा अब रात यहीं कटेगी। बिना बिस्तर के ही सही। इसमें कुछ विशेष आनन्द आयेगा। आज तक यहाँ का खाना नहीं चखा था। इसका आनन्द भी आज ले लूं। परन्तु प्रकृति को दया आई। मेरे सामने दो सौ बहत्तर नम्बर का क्लीनर आ खड़ा हुआ।

'साहब आपने तो कमाल ही कर दिया।'

'कैसे लौटे ?'

'वाउचर निकाल कर देखा, तब पता चला।'

'खैर कोई बात नहीं।'

'कितनी दूर से लौट कर आया हूँ। मोटर वहीं रुकी है। यहाँ से एक मील दूर।'

इसके पश्चात जो उसने गाड़ी की चाल छोड़ी, उससे यह भय हुआ कि पहले गाड़ी इसलिए नहीं उलटी कि अब उलट सके। मोटर लारी को पाँच बजे डलहौजी पहुंच जाना चाहिये था, परन्तु साढ़े छः बजे पहुँची। इस पर कोई रोक थोड़ी है। अच्छा हुआ अङ्ग्रेजों के जाने के साथ रोक भी गई, नहीं तो हर बात में रोक। समय की रोक, काम की रोक, यह रोक, वह रोक। अब तो डलहौजी की सुन्दरता को भी रोक नहीं। यह भी क्या कि प्रतिवर्ष अप्रैल से अक्टूबर तक यात्रियों का ताँता लगा रहे। शान्त पहाड़ पर छुट्टी मनाने वालों की भीड़ लगी रहे। जब से वे गए, यह झगड़ा ही उठ गया। न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी। उनकी देखा-देखी भारत-वासी भी यहाँ आते थे। अब वे भी किसका अनुकरण करें? अब लूटें तो लारियों वाले किस को लूटते हैं? यहाँ के मज़दूर भी तो खूब कमाते थे। अब उनका दिमाग ठिकाने आ लगा होगा। होटल वाले सीधे मुँह बात न करते थे। अब अड्डे पर उतरने वाले यात्री कम होते हैं और होटलों के गाइड अधिक। इसी चमत्कार के कारण जो फ्लैट छः सौ रुपयों में मिलता था, आज सौ में मिलता है। और लेने वाले फिर भी कम। कोठी वाले भी अब ठीक हो गए। कितने अधिक दाम चार्ज करते थे! अब सब खाली पड़ी हैं। एक सज्जन शिकायत करने लगे—

'साहब क्या बताएं। गवर्नमेंट ने प्रापर्टी टैक्स की प्राप्ति के लिए तंग कर रखा है। आप ही बताइये कि तीन वर्ष से कोठियाँ बिल्कुल खाली पड़ी हैं। टैक्स क्या अपने घर से दें?'

'परन्तु लाला जी, जब उससे पहले मनुष्यों की खाल उतारा करते थे, तब अधिक रुपया न लोगों में बांटते थे, न सरकार ही को देते थे।'

वे ऐनक के पीछे से लाल-पीली आँखें दिखाते हुए, जल्दी जल्दी हुक्का गुड़गुड़ाने लगे। होटल वाले आज हम जैसों ही को रईसज़ादे समझ रहे हैं और हम से बड़ी-बड़ी आशाएं बाँधे बैठे हैं। वे भी सच्चे हैं। अङ्गरेजों के उत्तराधिकारी हम ही तो ठहरे! कुछ उनका दुर्भाग्य, कुछ हमारा हतभाग्य।

आप यह नहीं कह सकते कि यहाँ केवल प्रकृति ही की उदारता है। पंजाब का गया बीता पहाड़ी स्थान भी दूसरे सूबों के अच्छे पहाड़ी स्थानों की समानता कर सकता है। फिर जब कि लिपस्टिक पर कोई कन्ट्रोल न हो, बाजार में रेशम सुलभ हो और गर्म वस्त्रों की कमी न हो। पंजाबी स्त्रियां विशाल-हृदया होती हैं। लिपस्टिक के दूकानदार उनको कितने आशीर्वाद देते हैं।

यदि आप शहर के शोर से उकता और मैदानों की गर्मी से घबरा चुके हैं तो डलहौजी आपका स्वागत करेगा। यदि तथा-कथित नेताओं की कूटनीति से कुछ देर के लिये बचना चाहते हैं तो यहाँ अवश्य पधारिये। यदि छलकपट के वातावरण और मानव रूप में फिरने वाले भेड़ियों से कुछ देर के लिये बचना है तो यहां आने से मत चूकिये।

दिल्ली से पठानकोट तक रेलगाड़ी जाती है। पठानकोट से एटलस और एशियाटिक कम्पनी की मोटरें चलती हैं और यदि आप पक्के घुमक्कड़ हैं तो पैदल ही तशरीफ ला सकते हैं। आखिर पचास मील का भी कोई फासिला होता है?

पश्चाताप

५

पश्चाताप

वह दबे पाँव कमरे में प्रविष्ट हुआ। एक पलंग पर वह सो रही थी। दूसरे पर दोनों बच्चे सो रहे थे। तीसरा खाली पलंग उस का था। वह उस पर लेट गया। बिजली के लैम्प का प्रकाश सोने वाली के चेहरे पर पड़ रहा था। उसने पहिले उसके चेहरे को देखा, फिर सामने दीवार पर लगे चित्र को। आकृति वही थी परन्तु अन्तर बहुत था। क्या उसका पहिले का सौन्दर्य लौट कर नहीं आ सकता ?

"यदि आदेश दो तो तुम्हारे लिये आकाश के तारे तोड़ लाऊँ।"

उस ने एक दिन उस से कहा था। वह उस समय पलंग पर लेटी एक गुलाब के फूल से खेल रही थी। सामने एक बहुत बड़ा दर्पण था। उसकी आकृति और गुलाब के फूल में कोई अन्तर नज़र नहीं आ रहा था, केवल इस के कि पुष्प को पौदे से तोड़ लिया गया था। रेशमी पलंग की चादर,

रेशमी सलवार, कमीज़, रेशमी दुपट्टा। रंग सब का चाकुलेट। बालों में गुलाब का फूल और हाथ में। फूल और कपोल दोनों का रंग एक सा प्रतीत हो रहा था। वह पुष्प को कभी अपने सुन्दर मस्तक पर रखती, कभी नासिका पर, कभी ठुड्डी पर। दुपट्टा धीरे-धीरे सिर से सरक जाता। वह उसे दोनों हाथों से संभालती हुई फिर सिर पर ले जाती। फिर दर्पण में निहारती।

उसका प्रेमी सोफ़े पर मर्माहत पड़ा था। वह लम्बे-लम्बे उच्छ्वास लेने के अतिरिक्त कुछ न कर सकता था। केवल पाषाण की मूर्ति बना उसको देखता रहता।

"आप तो ऐसे लेटे हैं जैसे स्वप्न देख रहे हों," वह कहने लगी।

"मैं यह सोच रहा हूँ" उसने उत्तर दिया, "कि यह सब स्वप्न बन कर तो न रह जायगा ?"

वह मौन रही।

"क्या मेरा सन्देह सत्य निकलेगा ?" वह पूछने लगा।

"मैं क्या जानूं।"

"ठीक कहती हो !" उसने ठण्डी साँस भर कर कहा। "आप क्या जानें।" और वह मौन हो गया।

वह सच्चे आनन्द की खोज में भटक रहा था। उसी की खोज में अपने एक मित्र के साथ यहाँ भी आने लगा था। उसे अपनी स्त्री के व्यवहार से संतोष न था। वह कुरूपा थी और कठोर स्वभाव की। उस में न नम्रता थी, न आकर्षण। वह न पठिता थी और न चतुर। उसमें यही एक गुण था कि उसने कई एक बच्चे जन लिये थे। और सब बच्चे मर

गए, एक पुत्र शेष रहा था जो कालेज में पढ़ता था । पिता को उस से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं था । स्वभाव और आकृति में उस पर माँ की छाप थी । वह प्रत्येक मास मनी-आर्डर द्वारा कुछ रुपया पुत्र को भेजता । उसके जीवन में पुत्र का अस्तित्व केवल इतना ही था । केवल यह विचार कर कि आफ़िस में पूरे परिश्रम से काम करने से कुछ शांति प्राप्त हो सके वह तन मन से अपने सरकारी काम में जुटा रहता । अधिकारी उसके काम को सराहते, और उसके आधीन कर्मचारी उसे प्रसन्न रखने की चेष्टा करते । उसके कार्य की सब लोग सराहना करते । प्रायः समाचार पत्रों में उसकी प्रशंसा छपा करती । परन्तु आफिस से जाने के पश्चात उस पर उदासी छा जाती । उससे बचने के लिये वह क्लब चला जाता, और हंसी, विनोद गप और अट्टहास में अपना समय बिताता । परन्तु घर लौट कर उसे ऐसा प्रतीत होता कि उसका जीवन पुनः अंधेरे गढ़े में गिर गया । न हँसी न विनोद, न प्रेम न आनन्द ।

उसकी पत्नी उसे समझने में विवश रहती । उन दोनों के मध्य जैसे एक खाई थी, जिसे पाटना असंभव हो गया था । दोनों एक घर में रहते हुए भी पृथक रहते । वह अनुभव करता कि वह घर में एकाकी रह रहा है । जैसे उसकी धर्म-पत्नी जीवित रहते हुए भी जीवित नहीं है, जैसे उस में और सेविका में कोई अन्तर नहीं है । सेविका से तो अपनी इच्छा के अनुसार काम ले सकता था, परन्तु स्त्री से यह आशा भी निराशा मात्र थी । घर के नीरस, शुष्क और कटु जीवन को वह मित्रमंडली में जाकर भुलाने की चेष्टा करता । मदिरा के प्यालों में जीवन के दुःख-पूर्ण क्षणों को डुबोने का प्रयास करता । एक दिन उसके प्रिय मित्र कपूर ने उससे कहा :

'चलो, आज तुम्हें गाना सुनवाऊं।' वह उसे प्रेमा के यहाँ ले आया। इसके बाद वह बार बार प्रेमा के यहाँ आने लगा। घण्टों गाना सुनता। आरम्भ में उसका हृदय प्रेमा की ओर आकर्षित न हुआ परन्तु कुछ दिनों के उपरान्त उसने अनुभव किया कि वह अच्छी तो है। दिन गुज़रने लगे। वह उसके अधिक निकट होता गया। आफ़िस से वह घर आता, परन्तु खड़े खड़े। फिर शीघ्र प्रेमा के घर पहुंचता। दफ़्तर के काम से उसकी रुचि हट गई, और वह भाररूप प्रतीत होने लगा। पहिले वह दफ्तर के निश्चित समय से अधिक समय वहाँ रहा करता था। परन्तु अब समय समाप्त होने से पहिले ही उठ आता। पहिले जब वह निरीक्षण करने बाहर जाता तो कई कई दिन बाहर लगा देता। परन्तु अब शीघ्र ही लौट आता। उसकी दशा विचित्र सी होने लगी। एक दिन उसने अपनी परिस्थिति का सिंहावलोकन किया। उसने देखा कि प्रेमा उसके जीवन पर आच्छादित हो चुकी है। संभवतः यह अस्थाई दशा हो और कुछ समय पश्चात मादकता उतर जाय। परन्तु उसके हृदय में उठा, "क्यों न इस से विवाह कर लिया जाय?" विवाह! वह अट्टहास से हँसा। प्रेमा से विवाह! वैश्या से विवाह! मूर्ख कहीं का! परन्तु शनैः शनैः यह विचार पुष्ट होता गया।

एक दिन वह प्रेमा के पास मौन धारण कर बैठा रहा। वह चिरकाल प्रतीक्षा करने के पश्चात बोली,

"आज आप चुप्पी साधे क्यों बैठे हैं?"

"मैं सोच रहा था कि"………वह चुप हो गया।

"हाँ हाँ कहिये," वह बोली।

"क्या तुम मेरी नहीं हो सकती?"

"तुम्हारी तो हूँ।"

"ऐसे नहीं।"

"और कैसे !"

"पूर्णतया "

"किस प्रकार ?"

"मैं यह सहन नहीं कर सकता कि कोई अन्य व्यक्ति तुम्हारे पास आए।"

"मेरी तो यह अजीविका है," वह बोली।

"तुम्हें यह अजीविका छोड़ना पड़ेगी," उसने कहा।

तो जीवन निर्वाह किस प्रकार होगा ?" वह आश्चर्य-चकित होकर बोली।

"इसका उत्तरदायी मैं हूँगा।"

"मैं अकेली नहीं हूँ। माँ और भाई भी हैं।"

"उनकी जरूरत भी पूरी करूंगा।"

"अन्य व्यक्ति भी तो हैं जैसे......"

"इन सबको एक मास का वेतन देकर आज ही विदा कर देंगे।"

"आप सम्भवतः शीघ्रता कर रहे हैं," वह कालीन पर नयनों को झुकाए हुए बोली। कुछ क्षण मौन रह कर बोली,

"इसका भाव यह होगा कि आप एक गाने वाली से जो हमारे समाज में घृणित दृष्टि से देखी जाती है, विवाह कर रहे हैं। अपने परिणाम पर विचार नहीं किया।"

"आवश्यकता ही नहीं।"

"आपको न हो, मुझे तो है," वह गम्भीरता से बोली।

"वर्तमान का ध्यान करो, भविष्य स्वयं अपनी चिन्ता करेगा। तुम यह घर छोड़ कर मेरे साथ रहोगी।"

"और आपकी धर्मपत्नी ?"

"अपने मायके जायगी। उसे पैसा चाहिये, वह मिलता रहेगा।"

"फिर विचार कर लीजिये," वह कहने लगी। "आप अपनी धर्मपत्नी, बच्चे और अधिकारियों का ध्यान रख कर बात कीजिये।"

"स्त्री और बच्चे की चिन्ता मुझे नहीं। अधिकारियों को मेरे काम से सम्बन्ध है, मेरे निजी जीवन से नहीं।"

बाजे वाले और नौकरों को एक एक मास का वेतन देकर बिदा कर दिया गया। मकान छोड़ दिया गया। प्रेमा स्थायी रूप से उसके घर आ गई। नगर में इस घटना से सनसनी फैल गई। किसी ने भी इसे अच्छी दृष्टि से नहीं देखा। जो व्यक्ति प्रेमा के घर आते जाते थे, उन्हें स्वाभाविक बड़ा दुःख हुआ। उन्हों ने उसके विरुद्ध दिल खोल कर प्रचार किया। अधिकारी वर्ग को उलाहने का स्वर्ण अवसर प्राप्त हुआ। सम्बन्धियों ने इसकी यथेष्ट निन्दा की। ससुराल वालों ने अभियोग की धमकी दी। परन्तु प्रत्येक विरोध इसके निश्चय को दृढ़तर करता गया।

सहसा घण्टे की टिक टिक से उसे ज्ञात हुआ कि बारह बज रहे हैं। परन्तु उसकी आँखों में नींद नहीं थी। इस ध्वनि ने प्रेमा को भी जगा दिया। उसने अर्ध-विकसित नयनों से घड़ी की ओर देखा, फिर पलंग की ओर फिर अचानक उठ बैठी और रोष से बोली।

"आप इतनी रात तक कहां रहे हैं ?"

वह मौन रहा।

"मैं सब जानती हूँ आप जहाँ जाते हैं और इस समय तक कहाँ रहते हैं।"

"तो फिर पूछती किस लिये हो ?"

"इसलिये कि आपका वहाँ जाना बन्द कर सकूं।"

"तुम क्या बन्द करोगी," उसने व्यंग से कहाँ।"

"आपने मुझे और अपने आपको गलत समझ रखा है। आप में जितनी शक्ति है उस से अधिक समझ बैठे हैं। सम्भवतः स्त्री की हठ धर्मी का आपको अनुभव नहीं हुआ।"

"खूब हुआ है, साहिब"

"तो ठीक प्रकार नहीं हुआ है"

"इन व्यर्थ की बातों से क्या लाभ ? यह बतलाओ कि तुम चाहती क्या हो ?"

"आज से तुम्हें उस स्त्री के यहाँ जाना बंद करना होगा।"

"वह तुम्हारा क्या बिगाड़ती है ?" वह चिल्लाकर बोला।

"क्या आपको अभी तक यह भी नहीं मालूम कि किसी के पति पर डाका डालने वाली स्त्री उसका क्या बिगाड़ती है ?"

"तुमने भी तो डाला था !"

"मैं स्वयं डाका डालने नहीं आई थी।"

"वह भी स्वयं कब आई है ?"

"परन्तु मैं उसे डाका नहीं डालने दूँगी। तुम्हारी पहिली धर्मपत्नी को अपने अधिकार की रक्षा का ध्यान नहीं था, परन्तु मैं अपने अधिकारों का अपमान होते नहीं देख सकती।

पुरुष केवल अपनी वासना-पूर्ति का ही ध्यान रखता है। वह स्त्री की दुर्बलता से शेर बन जाता है। परन्तु मैं निर्बल नहीं हूँ। मुझे अपनी शक्ति का गर्व है।"

"इसीलिये तुमने यह शक्ति दूसरी स्त्री को कुचलने में प्रयोग की। आज वह मायके में पड़ी सड़ रही है और तुम्हारे कारण से यहाँ आने का साहस भी नहीं कर सकती।"

"उसकी निर्बलता उसके साथ है। मैं निर्बलता से घृणा करती हूं। स्त्री की इसी निर्बलता से लाभ उठा कर मनुष्य एक के बाद दूसरी और दूसरी के पश्चात तीसरी स्त्री पर जाल डालता है। स्त्री को यदि अपने बल का गर्व हो तो वह बदला ले सके परन्तु निर्बलता ने उसे इतना दबा दिया है कि आँसू बहाती जायगी और अत्याचार सहती जायेगी। परन्तु अब पराधीनता का समय व्यातीत हो गया और ऊंच नीच का भी।"

"अच्छा!! अच्छा!! अब सो जाओ।" उसने आँखें बन्द करके करवट बदल कर कहा। उसके मस्तिष्क में विचारों का समुद्र लहरा रहा था। उसने सोचा था कि प्रेमा से शादी करके सच्ची शान्ति प्राप्त हो जायेगी। परन्तु दो बच्चे पैदा होने के उपरान्त भी वह शान्ति मृगतृष्णा रही। अब वह अपनी भूल पर पश्चाताप कर रहा था। जो स्त्री उसे एक दिन रमणीरत्न प्रतीत हो रही थी, अब उतनी ही घृणास्पद मालूम दे रही थी। जिसे प्राप्त करने के लिये वह किसी समय पागल हो रहा था, अब उस से छुटकारा पाने के लिये विह्वल था। जिसे पा सकने की चिन्ता ने उसकी निद्रा को उड़ा दिया था अब उस से पीछा छुड़ाने के लिये उसकी नींद उड़ गई थी। परन्तु क्या वह इस फंदे से छुटकारा पा सकता है?

महेन्द्र को पत्र

५

महेन्द्र को पत्र

आज मैंने निश्चय किया कि महेन्द्र के पत्र का उत्तर दे ही दूं। उसने तीन मास पूर्व एक पत्र लिखा था कि वह और उसकी धर्मपत्नी दस दिन के लिए मेरे पास आना चाहते हैं। मुझे उसके उत्तर में उन्हें यहाँ आने से रोकना था।

उन दिनों यहाँ गर्मी पराकाष्ठा पर थी, और मेरे पास बिजली का पंखा भी न था। जल का बड़ा कष्ट था। सब्ज़ियाँ या तो बाज़ार में मिलती ही न थीं और अगर मिलतीं तो बहुत अधिक मूल्य पर। केवल गेहूँ मिलता था। परन्तु अकेले गेहूँ से पेट कैसे भर सकता है! फल भी इस शहर में आने से घबराते हैं। उन्हें इस बात का खटका रहता है कि दूकान पर पड़े पड़े ही सड़ना होगा। अण्डे अवश्य सस्ते हैं, परन्तु एक दर्जन में से दस सड़े निकलते हैं।

अच्छी सोसाइटी यहाँ नाम को नहीं। प्रायः लोग छः बजे के बाद किवाड़ बन्द कर लेते हैं, और अपने घरों में छिप जाते हैं। जो थोड़े बचते हैं, वे किसी से मिलना अच्छा नहीं समझते। साहित्य से उन्हें रुचि नहीं, राजनीति में

प्रवृत्ति नहीं। इतिहास से अनभिज्ञ हैं। ब्रिज खेलने में हारने का डर है, भ्रमण करने में आलोचना का भय है, पुस्तकें पढ़ने से आँखें कमजोर होती हैं। केवल एक ही रोचक काम रह जाता है, पान चबाना और थूकना। महेन्द्र को इन बातों में से किसी का शौक नहीं। यहाँ आए, तो किस लिये ?

बस इतनी सी बात उसे पत्र में लिखनी थी, परन्तु काम की इतनी अधिकता और मिलने वालों की ऐसी भरमार कि गर्मी का मौसम व्यतीत हो गया और वर्षा ऋतु आ पहुंची। उसे किसी ने सन्देह में डाल दिया कि यहाँ बरसात का मौसम बहुत रमणीक होता है। यदि कोई व्यक्ति स्वर्ग का अनुमान लगाना चाहे, तो वह यहाँ की वर्षा-ऋतु से लगा सकता है। अब यह भरमाना नहीं, तो क्या है ? और उसे इस आपत्ति से बचाने में मित्र के अतिरिक्त और कौन सहायता कर सकता है ? यहाँ की बरसात ! ईश्वर बचाए इस से। इतनी कष्टप्रद और दुःखदायी ! कतिपय ऐसी ही कुछ पंक्तियाँ महेन्द्र को लिखनी थीं।

आज शनिवार था। मैंने निश्चय कर लिया कि पत्र लिख कर ही उठूंगा। मैंने पैड निकाला और जेब से कलम लेकर मेज की ओर चला। उसी समय बाहर से आवाज़ आई—

'शर्मा साहिब हैं ?'

'अभी तक तो हूँ।' मैंने उत्तर दिया और देखा कि लाला सूरजप्रसाद द्वार से झांक रहे हैं।

'आइये लाला जी।'

और लाला जी आ गए। आते ही उन्होंने मुझसे मेरी कुशलता इस प्रकार पूछना आरम्भ की जैसे मैं कई वर्षों के पश्चात् रोग-शैय्या से उठा होऊं ; जैसे वह मेरी कुशलता

नहीं पूछ रहे थे मुझे स्वस्थ रहने की औषधि दे रहे थे। पन्द्रह मिनट इधर-उधर की बातें करने के पश्चात् बोले—

'अच्छा साहिब, आज्ञा दीजिये। फिर मिलूंगा।'

'परमात्मा वह घड़ी न लाये।' मैंने मन में कहा। परन्तु द्वार के पास जाकर फिर लौटे और कहने लगे—

'हाँ एक कष्ट देना है।'

'क्या इन्जेकशन देंगे?' मैंने घबरा कर पूछा।

'अजी नहीं।' हंस कर बोले। 'आपके आफिस में एक क्लर्क बिसमिल्ला खां है······?'

'उसे मुअत्तिल कराना है?' मैंने बात काटकर कहा।

'नहीं, नहीं, साहिब। उसे छः मास नौकरी करते हो गए और अभी तक उसका वेतन नहीं बढ़ा और न वह कन्फ़र्म हुआ है।'

'लालाजी!' मैंने कुर्सी से उठकर कहा, 'यदि अभाग्यवश आप मंत्री बन गए, तो प्रत्येक मास वेतन-वृद्धि हुआ करेगी और कुछ दिनों के पश्चात् कन्फरमेशन।'

'नहीं ऐसा नहीं।' और पास आकर मेरे कान में बोले। 'इसका पिता बड़े काम का आदमी है। मुहल्ले के सब मुसलमानों के वोट इसके हाथ में हैं।'

'परन्तु मुझे तो वोटों की कोई आवश्यकता नहीं।' मैंने कहा।

'अरे भाई, मुझे तो है।' वह मुझे समझाते हुये बोले, 'म्युनिसिपल कमेटी का चुनाव नजदीक है और मुझे लोगों ने चुनाव लड़ने के लिए व्यर्थ विवश कर रखा है। अब इन सब कामों के अतिरिक्त मुझे यह भी करना पड़ेगा। अपने

देश के लिए मनुष्य क्या कुछ नहीं करता ?' मैं उनकी ओर गम्भीर दृष्टि से देखने लगा। संभवतः इस प्रकार उनकी देशभक्ति की थाह ले सकूं। फिर बोले—

'तो मैं चलता हूँ, यह तनिक करने का काम है। बेचारे का भला हो जाए तो अच्छा ही है। आप इसे यू-डी-सी लगा देना।'

'अभी डी० सी० लगा देता हूँ, "यू" फिर बना दूंगा।'

'ही-ही-ही, आप तो विनोद करते हैं।' और नौ दो ग्यारह हुए।

वाह रे लाला सूरजप्रसाद! ब्लैक-मार्केट को तुम पर कितना गर्व है! देश-सेवा का भाव तुम्हें कितना दुखित रखता है! जनता की चिन्ता में तुम कितने मोटे हो रहे हो! परन्तु महेन्द्र को पत्र? मैंने पेन को हाथ में लिया और लिखना आरम्भ किया।

'माई डियर...'

'आदाब अर्ज़ जनाब।' एक सज्जन ने द्वार पर आ कर कहा।

'आ...दा...ब अर्ज़,' मैंने विवश होकर उत्तर दिया।

'भीतर आ सकता हूँ?' उन्होंने प्रकोष्ठ में पैर रखते हुए कहा। वे मुझसे कई गुना भारी थे। उनको धक्के देकर निकालना भी मेरे सामर्थ्य के बाहर था। मैं चुप रहा। इतने में वे कुर्सी पर जम चुके थे।

'मेरी पत्नी आप से मिलना चाहती हैं।' वे बोले।

'क्यों? मुझ से क्यों मिलेंगी?' मैंने घबराकर पूछा। 'क्या आप...'

'नहीं, नहीं, ये एक स्कूल में टीचर हैं।'

मैंने शाँति का निश्वास छोड़ते हुये कहा,

'ओह!'

वे बाहर गये। एक मिनिट के पश्चात् एक महिला प्रकोष्ठ में आई। उन्होंने मुंह से बुर्के को उलटा और आदाब अर्ज़ कहकर कुर्सी पर बैठ गई।

'कहिये!' मैं बोला।

'श्रीमान जी, मैं स्कूल में अध्यापिका हूँ। आपने मेरा तबादला फतेहजंग का कर दिया है।'

'परन्तु फतेहजंग तो रेलवे स्टेशन है और अच्छा शहर है।'

'श्रीमान् जी, मेरे पति भी हैं।'

'यह तो प्रसन्नता की बात है। उन्हें भी साथ ले जाइये।'

'बच्चे भी हैं।'

'उन्हें तालाब में छोड़ जाइये।'

'तालाब में!'

'मेरा मतलब है मछली पकड़ेंगे।'

'परन्तु वे तो स्कूल में पढ़ते हैं।'

'तो फिर पढ़ने दीजिये।'

'अकेले कैसे पढ़ेंगे?'

'दूसरे बच्चों के साथ पढ़ने दीजिये।'

'मेरे बिना वे कैसे रह सकेंगे?'

'तो साथ ले जाइये।'

'साथ!' वह ऐसे बोलीं जैसे बच्चे नहीं साँप हों।

'बच्चे तो आप ही के हैं न? साथ ले जाने में क्या हानि है?'

'बात यह है श्रीमान् जी' कि पीछे घर है। यदि बच्चों को साथ ले जाऊं तो "वे" क्या करेंगे? यदि, "उन्हें" साथ ले जाऊं, तो बच्चे क्या करेंगे? आप दया कीजिये।'

'किस पर?'

'मुझ पर, "उन" पर, और बच्चों पर, और मेरा तबादला रोक दीजिये। देखिये, मेरे जाने से मेरे पति तथा बच्चों को कितना कष्ट होगा।'

'परन्तु फतेहजंग किसको भेजूं?'

'नुसरत बी को। छः वर्ष से यहीं पड़ी हैं। काम काज कुछ नहीं करतीं और अकेली जान है।'

वह चली गईं।

मैंने पत्र की ओर दृष्टि उठाई और लिखना आरंभ किया–

'माई डियर महेन्द्र, आपका पत्र मिला।'

'कहो भाई क्या बन रहा है?'

श्रीधर श्रीवास्तव मुस्कराते हुए अन्दर प्रविष्ट हुए।

उनकी बातों से पता चला कि उनकी दूर के रिश्ते की बहन मिशोरी स्कूल में पढ़ाती हैं। उनका तबादला सिंगापुर का हो गया है। वह विधवा हैं। वहाँ जाने में आपत्ति होगी।

'परन्तु इसमें मेरा क्या अपराध है?' मैंने कहा।

'अपराध तो मेरा भी नहीं, मित्र।' श्रीधर बोले, 'परन्तु अबला स्त्री को इतना परेशान करना अच्छा नहीं।'

'ज़बान संभाल कर बोलिए, श्रीवास्तव साहब! ऐसी

कड़ी बात भी अच्छी नहीं।' ये शब्द मेरे मुंह पर आकर रह गए, जैसे बुद्धि ने जिह्वा को समझाया कि इनकी मोटर की प्रायः आवश्यकता पड़ती है। ऐसा कहने से जरूरत पड़ने पर मोटर कहाँ से मिलेगी।

मुझे मौन पाकर श्रीवास्तव बोले—

'क्यों मित्र, क्या कल साँची चल रहे हो?'

'अवश्य।'

'अच्छा, तो मैं चलता हूँ। तनिक इनका ध्यान रखना।'

मैंने महेन्द्र को लिखने के लिए विचारों को एकत्रित किया, परन्तु फिर वही बाधा। जैसे तैसे पिंड छुड़ाया।

अब मैंने निर्णय किया कि पत्र समाप्त करके ही उठूंगा। परन्तु उसी समय एक जुलूस घर के सामने से निकला, 'मुर्दाबाद' के नारे लगाता हुआ। वह मेरे घर के सामने रुका। नारों की ध्वनि तीव्र होने लगी। दिल की धड़कन बन्द सी होने लगी।

'अपने अधिकार लेकर रहेंगे। रामलाल अमर हो। चीफ इन्सपेक्टर मुर्दाबाद।'

मेरे हाथ से पेन छूट गया। मैं बेसुध हो गया। पूरे पाँच मिनट के बाद सावधान हुआ तो जमालपुर के मुखिया आ पहुँचे। उन्हें एक मास्टर ने पीटा था। उनके जाने पर नन्दपुर के पटवारी आ गए। अध्यापिका ने उनके मकान का किराया तीन मास से नहीं दिया था। फिर लड़कों का एक डेपुटेशन आ पहुँचा। मास्टर अब्दुल्ला का स्थानान्तर न किया जाए, क्योंकि एशिया में उनकी योग्यता का मास्टर मिलना कठिन है।

लड़कों का जाना था कि रंग-महल स्कूल के हेडमास्टर साहब ने आकर रिपोर्ट की कि रंगीलाल ने एक हरिजन लड़के को तमाचा मार दिया है जिसके कारण सारे स्कूल में हड़ताल हो गई है। अध्यापक के विरोध में हरिजनों का एक जुलूस निकलने वाला है। जनता में गड़बड़ मची हुई है।

हेडमास्टर साहब गए, तो एक सिन्धी महोदय आए और कहने लगे कि उनका लड़का चार विषयों में अनुत्तीर्ण हो गया है, शरणार्थी होने के कारण उसे पास कर दीजिये। यह सब हो रहा था कि आफिस का समय हो गया। जल-पान भी न कर सका।

अब मैं प्रतिदिन महेन्द्र को पत्र लिखने बैठता हूँ। प्रति-दिन एक पंक्ति लिख लेता हूँ, परन्तु डर इस बात का है कि बरसात का मौसम समाप्त हो जायगा। फिर उन्हें सर्दी में आने से कैसे रोक सकूंगा। कहीं वह सर्दी के दिनों में यहाँ आन पहुँचे तो! भारतवर्ष में अतिथि बिस्तर के बिना ही आते हैं। आज-कल तो रूई भी नहीं मिलती। रज़ाइयाँ कहाँ से आयेंगी? निमोनिया होने की हालत में कष्ट के अतिरिक्त व्यय भी बढ़ जायेगा।

इससे तो यह अच्छा है कि दस दिन का आकस्मिक अवकाश लेकर महेन्द्र के पास चला जाऊं और उसे भली-भांति समझाऊं कि यहाँ आने के लिए कोई भी मौसम ठीक नहीं। ग्रीष्मकाल में भयंकर गर्मी पड़ती है और सर्दियों में असहनीय सर्दी। वर्षा से तो भगवान बचाये। अब रहा पतझड़, तो ऐसी ऋतु में आने से क्या लाभ? बसंत ऋतु में घर छोड़ना बुद्धिमानी का काम नहीं। जब उन्हें मुझसे मिलना हो, तो मुझे वहीं बुलवा लिया करें।

पहलगाम से चन्दनबाड़ी

९

पहलगाम से चन्दनबाड़ी

सर्वसम्मति से यह निश्चित पाया कि अगले दिन चन्दन-बाड़ी चलें।

"कल प्रातः ही चार घोड़ों का प्रबन्ध करना पड़ेगा", मैंने प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुये कहा।

"मुझे भी घोड़े पर बैठना होगा?" कृष्ण ने ऐनक में से देखते हुए पूछा।

"और घोड़ा आप पर कैसे बैठेगा?" मधु ने उत्तर दिया।

"किन्तु मैं सिद्धान्ततः घोड़े पर नहीं बैठता", वह बोला।

"सिद्धान्ततः गधे पर बैठ लेना", मधु ने परामर्श दिया।

मैं उनके सिद्धान्तों से परिचित हो चुका था। उनका सब से सुनहली सिद्धान्त था गान्ठ को मज़बूती से बांध कर रखना। मैंने एक प्रस्ताव पेश किया,

"यदि हम दोनों मिलकर एक घोड़ा ले लें तो?"

उनकी बाछें खिल गईं। जिस चिहरे पर अभी एक क्षण पूर्व हवाइयाँ उड़ रही थीं, वहां अब रौनक़ नाचने लगी। वे आनन्द-बाहुल्य से उठे और मेरी ओर लपके। मैंने समझा पागलपन का दौरा शुरू हो गया है, मैं स्फूर्ति से अपनी जगह से उठा और मेज़ के पार खड़ा हो गया। मैंने सोच रखा था कि अगर मर्ज़ ज्यादा सताने लगा तो मेज़ पर पड़ी लैमन की बोतल से उनका स्वागत करूंगा।

"ख़बरदार ! अगर आगे क़दम बढ़ाया !" मैंने कृष्ण को ललकारते हुये कहा।

"लेकिन तुम ने बात ऐसी की है कि तुम्हारी बलायें लेने को जी चाहता है", वे बोले।

"अरे बलायें क्या लोगे, ये खूबानियाँ लो", मधु ने हस्त-क्षेप करते हुये कहा।

खूबानियों को देख कर कृष्ण बलाओं को भूल गया और उनके साथ व्यस्त हो गया। कोई सेर भर खाने के बाद बोला,

"तो यह निश्चित हुआ कि मैं और आप एक घोड़ा लें............"

"और उसे आधा आधा बांट लें", मैंने वाक्य को पूरा करते हुये कहा।

"मैं व्यंग के मूड में नहीं हूँ", वे मुझे लताड़ते हुये बोले। "मैं कह रहा था कि हम दोनों के लिये एक घोड़ा पर्याप्त है। इससे पहाड़ की चढ़ाई का आनन्द भी ले सकते हैं और घोड़े की सवारी का भी।"

"............रंग भी चोखा आये", मधु ने चुटकी ली।

हम में से इस से पहले कोई चन्दनवाड़ी नहीं गया था

और सब ने उसके विषय में भिन्न भिन्न बातें सुन रखी थीं। कोई कहता था वहां गर्मी बहुत होती है, कोई कहता खूब सर्दी। मधु के विचार में वहां दिन को बर्फ़ पिघलती थी, कृष्ण के विचारानुसार रात में। कोई कहता प्रातःकाल चलना चाहिये, कोई कहता धूप तेज़ होने पर चलना ठीक है। एक के विचार में पैदल चलने में आनन्द आता था दूसरे के विचार में घोड़े की सवारी में।

"मैं नहीं समझता कि लोग अकेले कैसे आनन्द प्राप्त कर सकते हैं?" कृष्ण ने कहा।

"कुसंगति से अकेले जाना कहीं अच्छा है," मैंने छत की ओर ताकते हुये कहा।

अगले दिन प्रातः ६ बजे मेरी आंख खुली। मैंने मधु को आवाज़ दी। उसने उत्तर दिया कि मैं जग रहा हूँ। मैंने कृष्ण को आवाज़ दी। उसने कहा मैं सो तो नहीं रहा। मैं भी करवट बदल कर लेट गया। सात बजे फिर जगाया और यही उत्तर मिला। आठ बजे सब उठ कर बैठ गये। नौ बजे तक हाथ मुंह धोया, दस बजे तक नाश्ता किया और चल पड़े।

जब सड़क पर पहुंचे तो हमें देख कर घोड़े वालों का एक जन समुदाय हम पर लपका। कृष्ण ने समझा कि शायद आक्रमण करने आ रहे हैं और वापिस भागने को था, परन्तु मधु ने उसे सांत्वना दी। घोड़े वालों ने चमचख मचा दी। इतना शोर कि कान पड़ी सुनाई न दे।

"साहिब, मेरे घोड़े पर आइये।"

"साहिब! इसका घोड़ा किसी काम का नहीं। मेरी घोड़ी कबूतरी की तरह जाती है।"

"अरे साहिब! जब घर से इतने सौ मील दूर आये हो तो टट्टू पर क्यों बैठते हो?"

"क्या दाम लोगे?" मधु ने एक से पूछा।

"घोड़े के?" उसने उत्तर दिया।

"सवारी के।"

"रेट तो तीन है, आपसे पांच ही ले लेंगे।" उसने रिया-अत की घोषणा करते हुए कहा।

"मतलब?"

"अब अल्लाह ने आपको दो घोड़ों का शरीर दिया है, उसे एक ही को उठाना पड़ेगा……।"

"बको नहीं!" मधु ने अपनी छड़ी को ज़ोर से ज़मीन पर मारते हुये कहा।

"मार डाला।" कृष्ण ज़ोर से चिल्लाया! छड़ी उसके पांव से जा टकराई थी।

"अच्छा आप चार ही देना," घोड़े वाले ने सौदा चुकाते हुये कहा। "ये दोनों साहिब तीन तीन देंगे और आपकी बच्ची दो।"

"लेकिन हम तो केवल एक घोड़ा लेंगे" कृष्ण ने कहा, "और उसके चार आने कम देंगे।"

"उससे क्या होगा?" मैंने पूछा।

"'चार मीनार' के सिगरेट लेंगे।"

"ओह!" मैंने लज्जा को छिपाते हुये कहा।

मधु ने एक सिरे से दूसरे सिरे तक घोड़ों पर नज़र

दौड़ाई जैसे जीवन संगिनी का चुनाव करना हो और एक सफ़ेद पली हुई घोड़ी पर नज़र टिका कर बोले,

"हमें तो यह पसंद है।"

"इस बेचारी से भी तो पूछ लो।" कृष्ण ने धीरे से कहा।

"तुम खामोश रहो जी !" मधु ने डांट बताई।

"तो आप के लिये दूसरी यह घोड़ी ठीक रहेगी।" एक मोटे ताज़े काश्मीरी ने मधु को सम्बोधित करते हुये कहा।

"मैं दो क्या करूंगा ?"

"सरकार ! एक घोड़ी तो दम तोड़ देगी।"

"आप खामोश रहिये !" मधु ने चश्मे को संवारते हुये कहा।

"जी हुजूर।"

सब से पहले मधु को घोड़ी पर चढ़ाया गया। उस की सहायता के लिये दो हम थे और तीन घोड़े वाले। उन्हों ने जो फलांग लगाई तो एक काश्मीरी पर आ रहे। फिर फलांगे तो दुम की ओर मुंह करके बैठ गये। लात को घुमाते हुये सीधा बैठने की कोशिश की तो कीलों वाला बूट एक दूसरे काश्मीरी के जड़ दिया। उस बेचारे ने उसे कम्बल पर दबोचा और मधु को बाहों में। सबने यह परामर्श दिया कि फिर से चढ़ें और मेज़ की सहायता से। साथ वाली दूकान से मेज़ मांग कर लाई गई और उस की सहायता से वे सफलीभूत हुये।

"इस से पहले भी कभी घोड़ी पर चढ़े हो ?" कृष्ण ने व्यंग से कहा।

"और काम ही क्या किया है ?" मधु घोड़ी की गर्दन को थपकते हुये बोले।

मेज़ वापिस ले जाने लगे तो कृष्ण बोला—

"इस मेज़ को साथ ही घोड़ी पर रख लो।"

"नहीं साहिब, बोझ बढ़ जायगा।" घोड़े वाले ने 'सर्वाधिकार सुरक्षित' सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुये कहा।

कृष्ण ने मधु के अनुभव से लाभ उठाते हुये कहा,

"घोड़े को बिठलाओ।"

"यह घोड़ा है ऊंट नहीं ?" मैंने कहा।

"इस में क्या अंतर है ?" वे बोले।

"जो आप और मधु में है।"

मधु, कृष्ण और शम्मो घोड़ों पर सवार हो गये। मैं और एक साइस पैदल रवाना हो गये, चन्दनबाड़ी की ओर।

आध मील चलने के बाद मधु ने पूछा,

"कृष्ण ! अटैची लाये हो ?"

कृष्ण ने मुझ से पूछा, मैं ने नहीं में सिर हिला दिया। अब भला मुझ से कहा ही किस ने था ?

"लेकिन उस में तो शाम की चाय के लिये सामान है।" मधु ने कहा।

"सामान तो चन्दनबाड़ी भी मिल जायगा", मैंने कहा।

"अगर सामान का मतलब बर्फ़ से है, तो ज़रूर

मिल जायगा," मधु ने व्यंगपूर्वक कहा, परन्तु किसी ने उनकी बात की दाद न दी। कुछ देर बाद वे फिर बोले—

"अटैची लाना ही होगा। उस में चाय का सामान है और मैं naked tea कभी नहीं पीता।"

"तो कपड़े पहन कर पी लेना।" कृष्ण ने बग़ैर फ़ीस के परामर्श दिया।

'Don't be vulgar !" मधु ने चिल्लाकर कहा।

कृष्ण तो यथारीति अप्रभावित रहा। उसका घोड़ा अवश्य हिनहिनाया। दूसरे दो घोड़ों ने भी उसका अनुकरण किया।

हम सब वापिस लौटे। मैं होटल में गया, परन्तु चाबी मधु के पास होने के कारण फिर लौटा और अटैची केस लेकर वापिस आया। कारवां फिर रवाना हुआ। एक मील जाने के बाद मधु ने कहा।

"कृष्ण, देखो, कितना सुन्दर दृश्य है, लाओ कैमरा इसका फ़ोटो लें।"

"दृश्य तो यहां ऐसे बीसियों हैं", मैंने कहा।

"बड़े रूक्ष हो जी", मधु बोले। "कृष्ण,! तुम निकालो, कैमरा।"

"मेरे पास कोई अलादीन का लैम्प तो है नहीं जिसकी सहायता से कैमरा निकाल सकूं क्योंकि वह तो होटल में मेरे बैग में पड़ा है," उसने उत्तर दिया।

"उफ़ोह !" मधु ने चिहरे पर क्रोध लाने का प्रयास करते हुये कहा। "तुम ने सब मज़ा ही किरकिरा कर दिया।"

"लेकिन हमें क्या मालूम था कि आपका मज़ा कैमरे में है!" कृष्ण ने ज़ख्म पर नमक छिड़कते हुये कहा।

"बको मत और वापिस जाकर कैमरा लाओ," मधु चिल्लाकर बोला।

"सब मेरे साथ चलें तो जाऊंगा," उसने कहा।

"पांच मिलें तो सेवक तैय्यार है," मैंने कहा।

"पाँच नहीं पाँच सौ।" कृष्ण ने रोष में कहा और घोड़े को एड़ लगा कर भाग निकला, और शीघ्र ही कैमरा लेकर लौट आया।

"लेकिन यह तो कोई और कैमरा है," मैंने कहा।

"होटल के कमरे की चाबी तो मधु के पास रह गई थी। इसलिये मैं दूकान से किराये पर ले आया हूँ," उसने उत्तर दिया।

'और अपना दिमाग किराये पर चढ़ा आये हो," मधु ने चुटकी ली।

इतने में साढ़े दस बज चुके थे और धूप तेज़ हो रही थी। दो सिख सज्जन जो पहलगाम आकर हमारे वाक़िफ़ और कृष्ण के मित्र बन गये थे, फर्माने लगे कि आप को प्रातः आठ बजे चलना चाहिये था। उन में से एक साहिब बोले,

"लेकिन हमें पहले किसी बेवकूफ ने नहीं बतलाया।"

"हमें भी पहले किसी बेवकूफ ने नहीं बतलाया", मैंने कहा। मधु स्वाभावानुसार हंसने लगा। उसकी घोड़ी ने उसका अनुकरण किया। सरदार साहिब उसे इस प्रकार बे मौके हंसते देख कर अपने साथी से बोले,

"पागलपन का दौरा है। आओ चलें।"

और हम भी चले। कृष्ण, मधु, और शम्मो घोड़ों पर, मैं और साइस पैदल। निर्णय यह हुआ था कि हम बारी-बारी घोड़े की सवारी करेंगे। काश्मीर आकर हमारी जो शामत आई हमने कृष्ण को वित्त मंत्री बना दिया। हुकूमत बुरी चीज़ है। उसका असर सबसे पहले दिमाग़ पर होता है। अब कृष्ण के दिमाग़ में यह बात घुस गई कि मैनेजर क्या बना, निज़ाम का सिक्का बन गया और लगा चमड़े की चलाने। जो बात उसके मुंह से एक बार निकल गई वह पत्थर की लकीर, जो बात आपने की वह एक दम हक़ीर। जब हम सब को गर्मी लगती वह स्वेटर पहिन लेता और जब हमें स्वेटर की इच्छा होती. वह कमीज़ उतार देता। जब प्रातः काल होटल की खिड़की में से सामने पर्वत की चोटी पर सूर्य की स्वर्णिम रश्मियों को श्वेत हिम से आलिंगन करते देख मैं चिल्ला कहता,

"देखो, कितना सुन्दर दृश्य है!"

तो वह अद्भुत सी हंसी हंस कर कहता,

"मुझे तो इस में कहीं सौंदर्य नज़र नहीं आ रहा।"

और जब उसी समय होटल का चालीस वर्षीय सिख बैरा चाय लेकर आ खड़ा होता और मधु कहता, "तुम्हारी नज़र में यह सौंदर्य है?" तो वह अप्रसन्नता से मुंह फेर लेता।

हमारे झगड़े के अनेक विषय थे। उदाहरणतः सैर नाश्ते से पहले हो अथवा नाश्ता सैर से पहले। मटर खायें या मटन। बस में फरंट सीट पर वह बैठे या मैं। रात को डिनर

पश्चात 'शेरे काश्मीर' पार्क में जाकर रेडियो पर फ़िल्मी रिकार्ड सुनें या पनवाड़ी की दूकान पर। खाना मेवासिंह के होटल पर खायें या पकौड़ीमल के ढाबे पर। मधु स्थिति से पूर्ण लाभ उठाता। कृष्ण से कहता कि मैं गलती पर हूँ और मुझ से कहता कृष्ण गलत कह रहा था।

वित्त मंत्री होने और आयु में हम दोनों से छोटा और बुद्धि में कम होने के कारण कृष्ण ने सांझी घोड़े को अपनी इच्छानुसार प्रयोग करने के सर्वाधिकार सुरक्षित कर रखे थे। कभी तो वह कहता कि बारी-बारी आध घण्टे के लिये घोड़े की सवारी करेंगे। और कभी कहता कि हर कोई आध-आध मील तक सवार होगा। अब समय और फ़ासिले का निर्णय करने के अधिकार भी उन्हों ने सुरक्षित कर रखे थे। प्रायः उतराई आने पर वह उतर जाते और चढ़ाई आने पर मुझे नीचे उतरने का संकेत करते और साथ ही मेरी ओर छड़ी को बढ़ाते। उन्हों ने यह एक दस्तूर बना लिया था कि पैदल चलने वाला छड़ी लेकर चलेगा, अर्थात घोड़े की सवारी की अपेक्षा वह छड़ी की सवारी करता। मैं खामोशी से घोड़े पर से उतरता और छड़ी सम्भाल कर पैदल चलने लगता। ज्यों ही मैं उसे कोसने का विचार करता, प्रकृति मेरा ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेती।

दाहिनी ओर गीत गाती और शोर मचाती नदी भागी जा रही थी। अपने साधारण प्रारम्भ और असाधारण एकाकीपन की उपेक्षा करते हुये, अगण्य आकांक्षाओं को हृदय में छिपाये और अनेक आशाओं को मन में दबाये, वह एक दीर्घ और अज्ञात यात्रा पर चल निकली थी। मार्ग में जगह-जगह उसे सहगामी आ मिले थे जो अपने अस्तित्व को

मिटा कर उस में विलीन हो गये थे। उन का सामूहिक गीत चोटियों से लिपटे हुए बर्फ़ के कोषों से छेड़खानी करता। सूर्य की किरणें उन के हृदयों को पिघलातीं। जीवन से आलिङ्गन करने की अमिट चाह उन में तूफ़ान पैदा कर देती और वे अपने खज़ानों को लुटाने और अपनी पूंजि को बहाने का निश्चय कर लेते। गगनचुम्बी शिखाओं से पानी की अगण्य लकीरें पर्वत की बुलंद दीवारों का आश्रय लेकर बहने लगतीं, जैसे कई उर्वशियों के नेत्रों से अश्रुधारा के अगणित सोते बह रहे हों। नदी में सम्मिलित होते ही वे अपनी मूक रागिनी को उस के बुलन्द गीतों में मिला देते और नाचते और शोर मचाते मन्ज़िल की ओर चल पड़ते।

दस हज़ार फुट की ऊँचाई पर सूर्य की किरणें बर्फ़ को पिघला रही थीं ताकि मानवों के प्रयोग के लिये पानी का कोष समाप्त न हो सके, उनके खेत सिञ्चित हो सकें और उनकी फ़सलें उग सकें। और जब ये नाले और नदियां अपने प्रियतम समुद्र से जा मिलतीं तो यही किरणें उनको बादल के रूप में परिवर्तित कर देतीं और यही बादल बर्फ़ बनकर पर्वत पर जम जाते और यही बर्फ़ पिघल कर पानी बन जाती।

"यह किरणों का खेल जीवन का अनवरत खेल है," पास से गुज़रते हुये एक साधु ने मुझे धीरे से कहा, "यहाँ कुछ नष्ट नहीं होता, केवल माया अपना रूप बदलती है जैसे बर्फ़ से पानी, पानी से बर्फ़, जीवन से मृत्यु और मृत्यु से जीवन।"

"आप के विचार में जीवन और मृत्यु में कोई अन्तर नहीं?" मैंने विस्मित होकर उनसे पूछा।

"कदापि नहीं" उन्होंने तुरन्त उत्तर दिया। "दोनों एक ही चित्र के दो रूप हैं, एक ही सिक्के के दो पहलू।"

और वह लम्बे लम्बे डग भरता हुआ अमरनाथ की ओर चला गया..........

मुझे कृष्ण महाराज की अनुकम्पा पर छोड़ कर। और ये साहिब बहादुर बगल में कैमरा और गले में स्वेटर लटकाये, आंखों में चश्मा और सिर पर हैट लगाये, इस शान से सवारी का आनन्द ले रहे थे जैसे बाबा का घोड़ा हो। वे इस बात को एकदम भूले बैठे थे कि किराये का घोड़ा है और वह भी सांझी। उन्हें इस प्रकार अकड़ कर बैठे देखकर मेरी छाती पर सांप लोटने लगा और लोटता भी क्यों न? पैसे आधे भरूँ और टांगें पूरी तुड़वाऊँ। मधु चुपके से मैगज़ीन में दिया सिलाई दिखलाता मुझ से बोला,

"क्या तुम नहीं बैठोगे?"

"कहां चट्टान पर?" मैंने जल कर पूछा।

"नहीं, घोड़े पर।"

"उस पर कृष्ण बैठा है!"

"ओह!" वह बोला जैसे उसे नज़र ही नहीं आ रहा था। कृष्ण ने जानबूझ कर संकेत को समझने से इन्कार कर दिया और एक फिल्मी अलाप गुनगुनाने लगा।

अब भला मेरी छाती पर सांप क्यों कर न लोटता? जलन को शान्त करने के लिये मैंने ओक से नदी का ठण्डा पानी पिया। सहसा मुझे एक तरकीब सूझी।

"यहाँ बैठकर तनिक सुस्ताना चाहिये," मैंने परामर्श दिया।

मधु ने यथारीति स्वीकृति दी और कृष्ण ने स्वभावानुसार अस्वीकृति।

"भला यहाँ कौन सा स्थान है सुस्ताने के लिये ?" वह बोला।

"कौन सा स्थान नहीं है ?" मैंने फ़ौरन उत्तर दिया।

"अरे उतर भी अब !" मधु उसे डांट बतला कर बोला।

"तुम उतर जाओ, मैं तो घोड़े ही पर आराम करूंगा" उस ने उत्तर दिया।

"घोड़ा भी तो आराम करेगा" मधु ने उतरते हुये कहा।

"हाँ साहिब ! चढ़ाई में थक गया है, इसे आराम की ज़रूरत है।" मेरे संकेत करने पर साइस ने अपनी दीर्घ खामोशी को जीवन में पहली बार तोड़ते हुये कहा।

अब कृष्ण को मात खानी पड़ी और वह अनिच्छा से उतर पड़ा।

मैं अवसर की खोज में था। ज्यों ही वह ओक से नदी का पानी पीने लगा, मैं लपक कर घोड़े पर चढ़ बैठा। पांच मिनट की हाथापाई के बाद कृष्ण, साइस और कुछ राहगीरों की सहायता से मधु भी घोड़ी की पीठ पर जम गया और कारवां फिर रवाना हुआ।

बर्फ के पुल तक सख्त चढ़ाई थी। कृष्ण को वहाँ तक पैदल चलना पड़ा।

बर्फ का पुल प्राकृतिक सौंदर्य्य का एक सजीव चित्र था। वृहद्काय दो चट्टानों के ऊपर बर्फ का पुल खड़ा था और नीचे तीन धाराओं के रूप में, अनवरत कलरव मचाती हुई, नदी बह रही थी। उस का वेग भयावह था।

मधु को घोड़ी से उतार कर उसे बर्फ के पुल पर लाये

ताकि उस की थकान दूर हो जाय। उसकी थकान ने उसे ही नहीं, हम सब को और काश्मीर की सारी घाटी को परेशान कर रखा था।

बातों-बातों में हम बर्फ़ के पर्वत पर चढ़ गये! मधु ने मेरे कान में फूंक मारी और आज्ञा पालन का परिचय देते हुए मेरे हाथ कृष्ण की टांगों पर जा पड़े और उन्हें खींचने लगे। जैसा कि विचार था, टांगों के साथ उस का शरीर भी लुढ़कने लगा और दो चार मिनट में बर्फ के फ़र्श पर आ पड़ा। जीवन बेहद शुष्क होने के कारण कृष्ण यात्रा को जारी रखने और नदी के वेग में जा मिलने के विचार से खेल ही रहा था कि एक मृगनयनी के अट्टहास ने उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया। इस युवती की एक दृष्टि के लिये कृष्ण ने पहलगाम में कई दिन तक असफल प्रयत्न किया था और अब अप्रयास कृपा दृष्टि हो रही थी। उसने सोचा कि जीवन इतना रूक्ष नहीं जितना वह समझे बैठा है। वह उत्प्रेरित होकर उठा, पहाड़ पर चढ़ा और वहां से अपने आप फिसल पड़ा। उसे फिर इनाम मिला। उसने सोचा कि खेल को जारी रखूं, परन्तु मधु के दिल की जलन ने उसके संकल्प को विफल कर दिया।

चन्दनबाड़ी में एक ही होटल था, यदि दो तीन चूल्हों के ऊपर टूटे फूटे एक छप्पर को होटल कहा जा सकता है। दूसरे लकड़ी के शेड के नीचे अठारवीं शताब्दी की बनी हुई मेजों और कुरसियों पर दो ललनायें और चार लाले मूंग की दाल और कद्दू की सब्ज़ी पर बरस रहे थे। एक सिख युवक घृत-मिश्रित दूध की सहायता से मटन की प्लेट खा रहा था। उसे देख मधु की जुबान से पानी बहने लगा और

उसने भी प्लेटों का आर्डर दे दिया। तीन मटन की प्लेटें साफ़ करने के बाद होटल वाले से बोला,

"अरे महंगासिंह! यह तो कच्चा था।"

"साहिब! आप यहां आकर चूल्हे के पास बैठ जाइये, अभी पक जायगा।"

भूख तेज़ करने के लिये मधु घास पर लेट गया, कृष्ण मटरों के दाने निकालने लग गया और मैं बर्फ़ के दूसरे पुल की ओर रवाना हो गया। बड़ी प्रतीक्षा के बाद कृष्ण ने अपनी निगरानी में सब्ज़ी तैयार करवाई और मधु ने करवटों पर करवटें ले लेकर भूक बढ़ाई। परिणामस्वरूप उसने दो दर्जन चपाती और आधी दर्जन प्लेटें उदरदेव की भेंट कीं और घास पर लेट गया। उसे इस तरह लोट-पोट होते देख कर कृष्ण क्रोध को वश में न रख सका और बोला,

"क्या तुम नौ सौ मील का फ़ासिला केवल इसलिये तै करके आये हो कि यहां आकर गधे की तरह लेटो?"

"नौ सौ नहीं, ग्यारह सौ उन्नीस!" मधु ने शोधन करते हुये कहा। फिर बोला,

"अरे भई महंगासिंह! मैं केवल चार कप चाय पिऊँगा और दो आमलेट लूंगा। समझे?" एक क्षण पश्चात बोला,

"इन लोगों से भी पूछ लो इन्हें क्या चाहिये।"

"आपकी दया और महंगासिंह की कृपा," मैंने आदाब बजा कर कहा।

"अरे यार पेट तो अपना है।"

मेरी जेब से रूमाल निकाल कर कृष्ण ने अपनी ऐनक पोंछते हुये कहा।

चन्दनबाड़ी से अमरनाथ दो तिहाई फासिला रह जाता है और हमने यह सोचकर कि मधु का दो तिहाई हिस्सा वहीं न रह जाय, लौटने का संकल्प किया।

सिख युवक मुझे सम्बोधित करके बोला,

"बाबू साहिब ! क्या पैदल लौटेंगे ?"

"और सरदार जी, हवाई जहाज़ का प्रबन्ध कैसे हो सकता है ?"

"तो आओ चलें।"

कृष्ण इस प्रस्ताव से बहुत प्रसन्न हुआ। एक तो उसे घोड़े की सवारी मिल गई, दूसरे पुलवाली लड़की का साथ मिल गया और तीसरे मुझ से मुक्ति।

सरदार साहिब से बातें करते मार्ग कट गया। उन्होंने मुझे बतलाया कि वे सरगोधा के रहने वाले थे और आज कल अमृतसर में व्यापार करते हैं। उनका दुर्भाग्य उन्हें काश्मीर की सैर को खींच लाया। काश्मीर के एक गुरुद्वारे में वे ठहरे जहां ग्रंथी ने उनके ट्रंक से बहुत सी चीज़ें उड़ा कर उनका भार हल्का कर दिया था। वे इस बात पर शोक करने लगे, परन्तु जब मैंने उन्हें बतलाया कि मेरा बिस्तर मोटर वालों ने हज़म कर लिया, तो उनका मुखारविन्द हर्ष से खिल उठा।

बातें करते हुये हम आधा मार्ग लांघ आये और नदी के मोड़ पर अश्वारोहों की प्रतीक्षा करने लगे। एक घंटे के बाद घोड़े अपने सवारों समेत आ पहुँचे। कृष्ण ने उदारता का परिचय देते हुये घोड़े की बाग को मेरी ओर बढ़ाया और दस मिनट पश्चात गम्भीरता के साथ छड़ी को मेरी ओर

बढ़ाया। मैंने छड़ी का चार्ज सम्भाला और कृष्ण ने घोड़े का। तीन मील तक स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया। बर्फ़ अधिक पिघलने के कारण नाले चढ़ आये थे और उन्हें पार करने के लिये मुझे पैंट को ऊपर चढ़ाना और जूतों को उतारना पड़ता। इस दुख में इल्मदीन साइस का संग मुझे सांत्वना प्रदान करता। सरदार साहिब मेरा संग छोड़ गये थे। मार्ग में पड़ते ग्रामों में मैले-कुचैले वस्त्र पहिने काश्मीरी लोग अकड़ में खड़े, राहगीरों की ओर नज़र उठाकर भी न देखते थे। शायद वे यह समझते थे कि प्राकृतिक सौंदर्य से भरपूर उनके देश के दारिद्र्य का दायित्व इन यात्रियों पर भी था। प्रकृति के सुन्दर पहनावे और उनके गन्दे लिबास में कितना अन्तर था। मैले वस्त्र धारण किये उनके सुन्दर बच्चे भीख के लिये हाथ पसारते। इनकी उपेक्षा करता हुआ मैं आगे चलता गया। नैसर्गिक दृश्य मेरे लिये अनाकर्षक बन रहा था और नदी का गीत अरोचक। टांगों में दर्द था, शरीर में दर्द था, दिल में दर्द था। जीवन में एक नहीं, दो बारसां भी व्यापार में धोखा खा बैठा था, अब सांझी घोड़े में भी मात खाई। पैसे बराबर के गये, घोड़ा प्रतिद्वन्द्वी के क़ाबू में रहा।

पहलगाम से आध मील की दूरी पर घुड़सवार मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे और अट्टहास कर रहे थे, कदाचित अपनी जीत और मेरी हार के कारण। मुझे गम्भीर देख कृष्ण ! घोड़े की बाग को मेरी ओर बढ़ाया और मुझ से छड़ी माँगने का प्रयत्न किया। मैंने उस की इस हरकत को उपेक्षा की दृष्टि से देखा। अनुकम्पा से द्रवित हो अथवा व्यंग की दृष्टि से, मधु ने मुझ से कहा,

"थक गये होगे, घोड़े पर बैठने में क्या हर्ज है ?"

"खामोश रहने में क्या हर्ज है ?" मैंने उन्हें परामर्श दिया।

उन का व्यंग लुप्त हो गया।

मुझे इतना गम्भीर देख कर वे दोनों भी पैदल मेरे साथ चलने लगे। मधु मेरे कान में बोला "यह कृष्ण बड़ा स्वार्थ है, मेरे बार-बार कहने पर भी नहीं रुका।"

उस का सांस फूलने के कारण वह पीछे रह गया। तब कृष्ण ने धीरे से मेरे कान में कहा।

"यह मधु भी कितना विचित्र है। इस ने मुझे घोड़े से उतरने ही नहीं दिया। अच्छा कल गलेशियर चलेंगे।"

"एक शर्त पर," मैंने कहा!

"क्या शर्त!" वह बोला।

"सांझी घोड़ा नहीं लेंगे," मैंने उत्तर दिया।

सिर से पांव तक कृष्ण के शरीर में निराशा की लहर दौड़ गई।

भीगी बिल्ली

७

भीगी बिल्ली

जब कुलदीप का रोना बन्द न हुआ, तब आनन्द ने एक भरपूर तमाचा उस के गाल पर दे मारा। थप्पड़ खाकर वह और भी तेज़ हो गया और ज्यादा ऊंची आवाज़ में रोने लगा। आनन्द की क्रोधाग्नि जैसे प्रज्वलित हो उठी और उस ने उसके गालों को गरम कर दिया। बच्चा सहम गया। रुक्मिणी ने आनन्द के पास से कुलदीप को हटा लिया। उस का हृदय इसे सह न सका। वह गरज कर बोली—'क्या मार ही डालोगे? बच्चा ही तो है!'

'अच्छा अच्छा, चुप रह। आई है बड़ी रक्षक बन कर।'

'न जाने कभी कभी तुम्हें क्या हो जाता है?'

'मैं पागल ठहरा न?'

'और कसर ही क्या है? क्रोध आधे पागलपन का तो चिन्ह होता ही है?'

'बकवास बन्द कर।' वह चिल्ला कर बोला—'मैं तुम से तङ्ग आगया हूँ। शादी क्या की बर्बादी कर ली। न जाने उस समय मेरी बुद्धि पर पत्थर पड़ गया था, एक झमेला मोल ले लिया।'

'परन्तु यह विवाह आपके लिये कोई घाटे का सौदा नहीं रहा,' रुक्मिणी ने चिढ़ कर कहा—'तुम्हारे घर के भाग्य खुल गये। दहेज को देखकर तुम्हारे माता-पिता की तो आंखें ही खुली रह गयी थीं। तुम्हारे ग्रामवासी भी तो विस्मित थे। अब भी तो तुम्हारी पेंशन लगी हुई है। प्रति मास किसी न किसी प्रकार वज़ीफ़ा मिलता ही रहता है। भला इसे बर्बादी कैसे कहते हो? क्या इसी का नाम झमेला है?'

'अच्छा-अच्छा शोर मत कर'। वह नरम पड़ कर बोला—'स्त्रियों को इतनी ज़बानदराज़ी शोभा नहीं देती।' बात न बढ़े इसलिये उसे चुप रह जाना पड़ता।

वास्तव में आनंद यथार्थता के सम्मुख दम न मार सकता था। वह सुसराल की कृतज्ञता के भार से दबा हुआ था। परन्तु जब वह सहिष्णुता की पराकाष्ठा से बाहर जा कर रुक्मिणी को जली-कटी बातें सुनाता तो उसका हृदय छलनी हो जाता। घेरे में आई हुई बिल्ली का इसके अतिरिक्त क्या चारा होता है कि वह आक्रमणकारी को नोच कर उसकी बोटियां उड़ाने पर विवश हो जाये। भला कौन स्त्री अपने मैके पर आक्षेप सहन कर सकती है? और फिर रुक्मिणी, जो अपनी दूसरी बहनों की कड़ी टीका-टिप्पणियों की परवाह न कर, मैके से कुछ न कुछ लाती ही रहती। वह आनन्द को जानती थी जो साधारण सी बात से ही घबरा जाता, जिसे कोई भी बुरी ख़बर आपे से बाहर कर देती, जो आत्मसम्मान

सम्मान के कारण अपने दुखड़े दूसरों को नहीं सुना सकता। पर उसकी अपनी पत्नी के प्रति कृतघ्नता उस बेचारी के दिल को पारा बना देती थी। क्या रुक्मिणी उसकी प्रारम्भिक अवस्था को न जानती थी ? कितनी बार वह उनका स्वयं वर्णन कर चुका था। परन्तु न जाने, क्यों इतने शीघ्र अपने बीते जीवन के कठोर अनुभवों तथा कड़वी यथार्थताओं को वह भूल जाया करता था।

दरिद्र माता-पिता उसे स्कूल में पूरा ख़र्च भी न दे सकते थे। सिसकियाँ लेकर और आहें भरकर उसने दुःख के दिनों को काटा था। होस्टल में वह एक अनाथ लड़के का सा जीवन व्यतीत करता था। उसके माता पिता के जीवित रहते हुए भी, उसके लिये पेट पालने का ग़म, उसकी शिक्षा के ग़म से हज़ार गुना अधिक था। वह उनसे एक पैसा तक न मांग सकता था। हां, एक बार, किसी प्रकार, एक बिस्तर घर से ले आया था। और बिस्तर भी क्या था ! एक फटी दरी और एक गन्दा लिहाफ़। सड़ांद से भरपूर। उसके होस्टल के साथी लड़कों ने कई बार उसके बिस्तर को बाहर उठा कर फेंकने का इरादा किया परन्तु किसी कारणवश वे रुक गये थे। उस की दरिद्रता पर दया खाकर उस की स्कूल तथा होस्टल की फ़ीस माफ़ थी। रोटी का खर्च भी उसे माफ़ था। नवीं श्रेणी में जाकर, उसे पाँच रुपये मासिक छात्रवृत्ति भी मिलने लगी थी। दसवीं श्रेणी पास करने पर, उसे फिर से वज़ीफ़ा मिला। कालेज में दाखिल होना आसान हो गया। तब वह एक-आध ट्यूशन भी कर लेता।

परन्तु इस पर भी उसे एक अज्ञात भय दबाए रहता। जब वह किसी से बात करता तो डर-डर कर, उसके अङ्ग-अङ्ग से दीनता टपकती थी। उसकी रग-रग में हीनता का भाव

भगा था। दूसरों से बात करते समय वह शरमा जाता। प्रिंसिपल के पास जाते समय वह अनुभव करता जैसे फांसी के तख्ते की ओर जा रहा है। जब चपरासी को अपनी ओर आते देखता तो वह पसीने से शराबोर हो जाता। वह समझता कि उससे कोई भारी भूल हुई है और इसी कारण उसे प्रिंसिपल के दरबार में उपस्थित होना है।

एक बार कालेज के विद्यार्थियों ने उसे उसकी इच्छा के विरुद्ध एक नाटक में भाग लेने पर विवश किया। उस ने छुटकारे का लाख प्रयत्न किया, हज़ारों मिन्नतें कीं, परन्तु कोई सुने तब तो। वह डट कर इन्कार भी न कर सकता था। भला इतने लड़कों को नाराज़ करने का साहस भी कहाँ से लाता ? फिर मनीराम को कैसे नाराज कर सकता था, जो नाटक क्लब का सेक्रेटरी और कालेज का नेता था। ये महाशय कई वर्षों से लगातार बी० ए० की परीक्षा में फेल हो रहे थे। उनके पुराने अनुभव और सबल शरीर ने उन्हें कालेज में महत्व प्रदान किया हुआ था। किसी की मजाल न थी कि उसके सामने दम मार सके, अथवा उसकी बात टाल सके। प्रिंसिपल भी उससे सहमते थे। कालेज में यह सभी जानते थे कि प्रत्येक नये प्रोफ़ेसर को मनीराम को प्रसन्न रखना पड़ता था, नहीं तो उसके विरुद्ध कई मास तक प्रदर्शन होना संभव रहता था।

वह आनन्द पर बहुत दयालु था। परन्तु जब कालेज के शरारती लड़कों के गिरोह के एक डेपुटेशन ने मनीराम के हुज़ूर में पहुँच कर आनन्द को नाटक में भाग लेने के लिये जोर दिया तो वह उनकी माँग को ठुकरा न सका। आनन्द के लिये एक नई आपत्ति खड़ी हो गयी।

साँप के मुँह में छिपकली वाली बात थी। विवश हो उसे भाग लेना पड़ा। उसे माली का अभिनय करना था। भरी और सजी राज-सभा में, उसे फूलों के हार महाराज और महारानी को पहना कर यही कहना था—'महाराज की जय हो, महारानी की जय हो।' उसे अच्छी तरह इस अभिनय का अभ्यास कराया गया। परन्तु मञ्च पर पहुँच कर वह एक दम घबड़ा गया। मञ्च के सामने बहुत से लोग जमा थे, नगर के प्रतिष्ठित सज्जन, सजी-धजी स्त्रियाँ, कालेज के प्रोफ़ेसर और स्वयं प्रिंसिपल महोदय भी। सहसा हाल के एक कोने से एक ध्वनि उठी—'नन्दू घोट्टू, नन्दू रट्टू।' तभी कुछ लड़के एक स्वर होकर, तालियाँ पीटने लगे। ऊँचे स्वर से लोग अट्टहास कर उठे। प्रिंसिपल भी अपनी हंसी को न रोक सके। वह स्टेज पर ढकेल सा दिया गया। इसके पश्चात उसे मालूम नहीं कि क्या हो रहा है और वह क्या कर रहा है। उसके हाथ-पांव कांपने लगे और दिल धड़कने लगा। उसने अनुभव किया कि वह गहरे पानी में गोते खा रहा है। वह हैरान था कि क्या करे और क्या न करे। तभी उसे अपने हाथों में लिए हुए हार का खयाल आ गया। उसने झट से उसे अपने गले में पहिन लिया। हाल तालियों से गूंज उठा। साथ ही नारे बुलन्द हुए—'माली महाराज की जय।'

उस ने सोचा अवश्य उस से कुछ भूल हुई है। उस ने सहसा, हार अपने गले से उतार कर, दरबान के गले में पहिना दिया।

तालियाँ फिर गूंज उठीं। आवाज़ फिर बुलन्द हुई—'दरबान महाराज की जय।'

उसने हार दर्बान के गले से भी उतार लिया। उसके लिये फिर वही समस्या थी कि क्या करे। भय उस को दबाए जा रहा था। उसकी दृष्टि मञ्च पर आसीन महाराज और महारानी की ओर उठ ही न सकी। तभी मञ्च पर कहीं से एक बिल्ली आ गई। उसकी 'म्याऊं म्याऊं" ने श्रोतागणों के पेट में बल पैदा कर दिये—'बिल्ली महारानी की जय' की आवाज़ ने हाल को गुंजा दिया।

आनन्द के शरीर से पसीना छूटने लगा। उसके पैर डगमगाने लगे और ऐसा जान पड़ने लगा कि वह मञ्च पर गिर पड़ेगा, परन्तु उसी समय पर्दा गिर गया। तत्पश्चात् अत्यन्त अधिक ज्वर के कारण, वह एक सप्ताह कालेज न जा सका।

बी० ए० पास करने के बाद, साठ रुपया मासिक वेतन पर उसे एक बैंक में नौकरी मिल गयी। अपव्ययी था नहीं। थोड़ा व्यय करके चार पैसे बचा लेता और माता पिता को भेजता। उन बेचारों की दरिद्रता की तीक्ष्णता भी कुछ कम हुई और आराम की साँस लेने का अवसर प्राप्त हुआ। उनकी अवस्था कुछ आगे से सुधरने लगी। यदि प्रकृति ने उसे हृदय देते समय उदारता प्रकट न की थी तो उसे आकृति देते समय कंजूसी का प्रयोग भी न किया था। उसका गोरा रङ्ग, सुन्दर आँखें, भरा हुआ शरीर और लम्बा क़द दूसरों को उसकी ओर आकर्षित करता। इन कारणों से, और लड़कों की कमी के कारण, रुक्मिणी के पिता ने उसे अपनी लड़की के लिए पसन्द किया था।

दफ्तर में वह ऐसे रहता जैसे सब उसके अफ़सर हों। वह बात भी डरते-डरते करता जैसे दीवारों से भयभीत हो।

वह चपरासियों तक से डरता था। प्रायः वह किसी चप-रासी को अपने काम के लिये न कहता—कहीं वह इन्कार न कर दे और उसका दफ्तर के बाबुओं के सामने अपमान हो जाये। अधिक प्यास लगने पर भी वह चुप रहता और विवश होने पर धीमी आवाज़ में नम्रता के साथ कहता—"गुरुवचनसिंह, ज़रा प्यास लगी थी।" जैसे प्यास लगना घृणास्पद हो। इतना कह कर वह गुरुवचनसिंह की ओर देखता, उसकी प्रतिक्रिया देखने के लिये कि कहीं वह नाराज़ न हो गया हो। और यदि वह उत्तर में कह देता—'बाबू जी, अभी अवकाश नहीं', तो वह झट बोल उठता—'कोई बात नहीं। पहिले काम समाप्त कर लो। कोई इतनी अधिक थोड़े प्यास लगी है।' पुनः याद दिलाने का उसे साहस न होता, कहीं गुरुवचनसिंह बुरा न मान ले। वह स्वयं उठकर घड़े में से पानी ले लेता था।

वह साठ रुपये पर भर्ती हुआ था और पन्द्रह वर्ष पश्चात् अस्सी रुपये पर पहुँचा था। एक दो बार उसका वेतन कम भी हो गया था, क्योंकि एक मैनेजर साहब उससे नाराज़ होगये थे। वह खुशामद पसन्द थे। उन्हें शिकायत थी कि जब दफ्तर के सब बाबू उसकी चापलूसी करते हैं तो आनन्द खामोश क्यों रहता है। दफ्तर के शेष कर्मचारियों ने उसे समझाया कि खुशामद करना ही उन्नति के सोपान पर चढ़ने का एक साधन है। उसने हृदय को दृढ़ करके, मैनेजर के पास जाने का निश्चय भी किया। परन्तु कमरे के पास पहुंच कर उसके पाँव में जंजीर पड़ गई। लाख प्रयत्न करने पर भी वह अन्दर जाने के लिये दिल को न मना सका। कई बार वह दरवाज़े पर पहुँचा। परन्तु वहाँ पहुँच कर वह रुक जाता—यदि कहीं झिड़क दें, तो? मैनेजर साहब ने समझा कि वह

अभिमानी और अहंकारी है। जब वह प्रातः पहुँच कर नमस्ते भी कहता तो उसके हृदय की धड़कन तेज़ हो जाती।

उस के साथी और जूनियर आगे बढ़ गये। रामलाल एकाउन्टेण्ट बन गया। गिरधारी को असिस्टेण्ट मैनेजर का पद मिल गया। सादिक़अली और सुन्दरसिंह सुपरवाइज़र बन गये। परन्तु वह पीछे हटता गया।

सत्याग्रह के दिनों में उसकी शामत आयी। बैंक के कुछ बाबुओं ने आन्दोलन में भाग लिया और बन्दी कर लिये गये। छूटने पर, उनको स्टेशन से लाने के लिये, दफ्तर के सब कर्मचारी वहाँ पहुँचे। वह दुविधा में पड़ गया—यदि जाये तो सरकार नाराज़, यदि न जाये तो उसके साथी।

उसे जेल से अत्यन्त भय था और साथियों के क्रोध से बहुत डर—काश वह बीमार पड़ जाता और इस आपत्ति से छुटकारा पा सकता।

वह सचमुच बीमार पड़ गया और दस दिन दफ्तर न जा सका। परन्तु छुटकारा फिर भी असम्भव था। दफ्तर में सब लोग, कांग्रेस के छोटे-छोटे झण्डे और नेताओं के छोटे-छोटे चित्र अपने कोटों और कमीज़ों के साथ लगाये थे। उसे भी विवश हो ऐसा करना पड़ा। परन्तु उसका हृदय भय से दबा रहता—कहीं कोई इसकी सूचना न दे दे। इस विचार से वह कांप उठता। परन्तु दफ्तर वाले थे कि मानते ही न थे। वह घर जाते समय, दफ्तर से निकल कर, चारों ओर देखकर, इन बिल्लों को जेब में रख लेता। और अगले दिन दफ्तर में प्रवेश करते ही उन्हें फिर लगा लेता।

एक बार ज़ालिमों को मज़ाक सूझा तो चुपके से उसकी पीठ पर कांग्रेस का झण्डा चिपका दिया। इतना ही नहीं,

बाबू जैगोपाल ने एक परिचित ट्रैफिक के सिपाही को संकेत कर दिया। उसने ह्विसल देकर आनन्द को अपने पास बुलाया। सिपाही को देख कर उसके होश उड़ गये। उसके पैर कांपने लगे। उसकी आँखों के सामने हथकड़ी, जेल और न्यायालय घूमने लगे। वह गिरना ही चाहता था कि सिपाही ने उसे ललकारा—'क्यों साहब, जेल जाने को दिल बहुत उतावला हो रहा है क्या?'

साहब कुछ न समझ सके। डर और विस्मय से उसके मुंह की ओर ताकते रहे। उसे भयभीत देखकर सिपाही और भी तेज़ हो गया। जब उसने उसे बतलाया कि वह पीठ पर कांग्रेसी झण्डा लगाये फिरता है और दण्डस्वरूप उसे बन्दी बनाया जा सकता है, तो उस पर मनों बोझ पड़ गया। भाग्यवश कहीं से बाबू जैगोपाल उधर आ निकले। बीच में पड़ कर, अत्यन्त कठिनाई से, उन्होंने सिपाही को मनाया और उसके रोष को ठण्डा करने का नाटक किया। उसे क्षमा तो करवा दिया गया, परन्तु एक शर्त पर। अगले दिन सब का निमन्त्रण।

आनन्द को इस बात का दुःख था कि उसके साथी और जूनियर आगे चले गये थे और वह अभी तक वहीं सड़ रहा था। क्या पन्द्रह वर्ष का समय साधारण होता है? वह किसी से सिफ़ारिश न करवा सकता था। किसी की खुशामद न कर सकता था। उसे दफ्तर में काम करने से मतलब था और बस। उसका विचार था कि अफ़सर लोग स्वयं ही उसके कार्य को सराह कर उन्नति के लिये उसकी सिफ़ारिश करेंगे। परन्तु ऐसा न हुआ। भला दफ़्तरों में काम को कौन पूछता है? यदि ऐसा ही है तो चालाक मनुष्य तो

भूखे ही मर जायें। इन सब का क्रोध वह रुक्मिणी पर उतारता। शुरू में तो वह खामोशी से सहन करती रही। परन्तु कब तक? आखिर सहिष्णुता कोई फ़ौलादी टुकड़ा तो है नहीं कि न टूटे।

रुक्मिणी के पास आ कर उसका दबा हुआ व्यक्तित्व पूर्णरूपेण उभर जाता और उसके सब बन्द टूट जाते। वह हैरान होती कि दूसरों के सामने तो ये भीगी बिल्ली बने रहते हैं, उसी के सामने क्यों शेर बन कर बिफरते हैं? वह जानती थी जिस दिन वह उद्विग्न-चित्त रहता उस दिन कोई बुरी खबर सुन कर आता था। और जब दोनों के बीच उस दिन ही 'तू-तू मैं-मैं' ने दीवाल खड़ी कर दी, तब रुक्मिणी बोली,

'आज तुम नाराज़ क्यों हो?'

'नाराज़ नहीं हूँ। अपने भाग्य को कोसता हूँ।'

'किस कारण?'

'कारण और क्या हो सकता है? अन्याय का राज है। कल के बच्चे उन्नति कर रहे हैं और हम अभी तक उसी प्रकार चक्की पीस रहे हैं। अभी दो वर्ष पूर्व एक लौंडा दफ्तर में क्लर्क भरती हो कर आया था। आज एकाउंटेण्ट बन बैठा है।

'उस में क्या विशेषता है? क्या उसने कोई परीक्षा पास की है?"

'परीक्षा तो न जाने कितने लोगों ने पास की है परन्तु यह कोई विशेषता की बात नहीं है।'

'तो विशेषता की कौन सी बात है?'

'झूठ और खुशामद।'

'आप इस विशेषता को क्यों नहीं अपनाते ?'

'मैं ज़लील होना पसन्द नहीं करता।'

'तो धैर्यवान होना पसन्द कीजिये।'

बात बढ़ रही थी। कहीं रुक्मिणी आपे से बाहर होकर कुछ कह न बैठे, इस विचार ने आनन्द को भयभीत कर दिया। वह झट बोल उठा: 'ठीक है। ठीक है। ठीक है।'

याद

८

याद

आज फिर तुम्हारी याद आयी। यों ही, कभी-कभी, मेरे साथ ऐसा होता है। एक विचित्र भाव मुझ पर छा जाता है और मुझे असीम आनन्द की अनुभूति होती है। उस समय मेरा वातावरण मेरी नज़रों से ओझल हो जाता है और मेरे सामने एक नवीन दुनिया अस्तित्ववान हो जाती है। उस दुनिया में केवल एक ही आकृति भागती, खेलती और नाचती नज़र आती है। वह मेरे जीवन का कितना अमूल्य क्षण होता है। काश वह क्षण, एक लम्बी, सदैव रहने वाली, घड़ी बन सके ताकि मैं सारी आकांक्षाओं को उस पर निछावर कर दूँ, अपनी अभिलाषाओं का ढेर बना कर उसमें आग लगा दूँ, और अपनी तमन्नाओं को झुलसा दूँ।

आज धन-धान्य सम्पन्न और ऐश्वर्यवान होते हुये भी मैं बेचैन रहता हूँ। मान और प्रतिष्ठा मेरा खोया हुआ सुख नहीं लौटा सकती। मेरी विलायती डिग्रियाँ और मेरी ज़बरदस्त

प्रैक्टिस मुझे आनन्द नहीं प्रदान कर सकती। जीवन एक कोलाहल प्रतीत होता है जिससे बचने के लिए मैं एकान्त ढूँढ़ता रहता हूँ। और जब उस एकान्त में दिन भर की मनोव्यथा के बाद मैं अपने बिखरे विचारों को एकत्रित करता हूँ, तुम न जाने चुपचाप कहाँ से आ धमकती हो।

तुम्हारा आगमन कितने नाटकों का सूचक होता है। मेरे जीवन के अन्धकार को दीप्त करने-वाले ये नाटक कितने आनन्ददायक होते हैं। तमाच्छादित बीहड़ वन में लघु दीप का प्रकाश भी कितना जीवनदायक होता है! मैं इन नाटकों में खो जाता हूं।

"क्यों? क्या बात है आज?"—मैं पूँछ बैठता हूँ।

तुम खामोश रहती हो। जैसे तुमने मेरी बात सुनी ही नहीं। मैं उस प्रश्न को दुहराता हूँ। तुम मौन व्रत तोड़ने के पक्ष में नहीं। मैं एक बार फिर वही प्रश्न करता हूँ। तुम मुंह फेर लेती हो। परन्तु तभी कोई कमरे में आता है। शायद अखबार बेचने वाला जो पिछले मास के पैसे लेने आया है। तुम्हारा ध्यान झट उसकी ओर आकर्षित हो जाता है। तुम उसके साथ घुल-मिल कर बातें करती हो, उसे दस रुपये का नोट दे कर उससे बाक़ी पैसे वापिस लेती हो, धीरे-धीरे, आराम से। जब वह जाने को कदम बढ़ाता है तुम उसे रोक लेती हो और उससे भिन्न प्रकार के प्रश्न करती हो—"इस मास 'सरस्वती' क्यों नहीं आयी? न जाने कभी कभी 'माधुरी' को क्या हो जाता है!"

जब वह फिर जाने को चाहता है, तुम उसे फिर रोक लेती हो। अब तुम उसे दैनिक पत्रों के दिवाली अंक के विषय में पूछती हो। मैं सब सुनता हूँ। किन्तु तुम मुझे

नहीं देखतीं। क्या इसका कारण नाराज़ी है ? आखिर कोई कारण तो होना ही चाहिये ?

मैं हृदय के तहखानों को टटोलता हूँ। शायद कहीं कुछ कारण दीख पड़े। शायद मेरा तुम से कुछ दिन न मिल सकना तुम्हारे क्रोध का कारण हो। शायद तुम्हारे बुलावे पर न आ सकना तुम्हारे कोप का सबब हो। परन्तु यह क्रोध नहीं, षड्यंत्र है—मुझे अपमानित करने का, चोट पहुँचाने का। और शायद इसीलिये तुमने मुझे यहाँ बुलवा भेजा है। नौकर तो कहता था कि आवश्यक काम है। क्या है वह आवश्यक काम ? हाँ शायद यही है वह काम, घर बुला कर अपमानित करना !

न जाने कहाँ से मेरे दिल में एक प्रबल तूफान उठा। एक अद्भुत शक्ति मुझ पर छा गई। जैसे प्रचण्ड वायुवेग से पौधा काँप उठता है, तुम्हारे अनुचित व्यवहार से मेरा शरीर काँप उठा, और मैं तेज़ी से पीछे मुड़ा।

सामने सीढ़ियाँ थीं। मुझे खबर न हुई कि कितनी जल्दी मैं नीचे सड़क पर आ गया। मेरे कानों में आवाज़ें पड़ीं—"ज़रा ठहरिये ना !..........मैंने कहा......आप जा रहे हैं ?... परन्तु क्यों ? मैंने तो आप से बात भी नहीं की......ज़रूरी बात थी।..........सुनिये न !.......सुनिये न !..........ज़रा ठहरिये न।"

किन्तु मैं भागने लगा। आवाज़ का एक-एक शब्द मेरी टाँगों में बिजली की तेज़ी पैदा करता और उन्हें और भी तेज़ भागने पर उकसाता। जैसे ये आवाज़ मुझे डरा रही थी, जैसे मैं किसी भयावह शत्रु से बचने के लिये आश्रय ढूँढ़ रहा था।

"बाबू जी, बाबू जी, ठहरिये !" अचानक कानों में आवाज़ गूँजी।—"आप को बुला रही हैं......बाबू जी ! बाबू जी।"

मैं और भी तेज़ी से भागने लगा।

तत्पश्चात परीक्षा के दिन आये। इस बार वे दिन मेरे लिये रोचक न बन सके। परीक्षा के कमरे में पर्चों पर तुम्हारी ही आकृति नज़र आती। प्रत्येक प्रश्न में तुम्हारा नाम छिपा होता। भला वकालत के पर्चों को तुम्हारे नाम से क्या सम्बन्ध ? आँखों को ज़ोर से मलता और फिर पर्चे के प्रश्न पढ़ने का विफल प्रयास करता। उत्तर लिखते समय अजीब हालत हो जाती। लाइनों की लाइनें तुम्हारे नाम से भर जातीं। मैं झुँझला उठता—भला यह क्या मज़ाक़ है ?—फिर पर्चे की ओर झुकता। हृदय एक रण-क्षेत्र बन जाता, जहाँ प्रतिद्वन्द्वी वर्गों में भीषण युद्ध आरम्भ हो उठता।

एक आवाज़ आती—

"पागल ! हसीनों से लड़ाई कैसी ?"

दूसरी आवाज़ आती —"परन्तु मान भी तो किसी चीज़ का नाम है ?"

"अरे चुगद हो !"

"तो वे चाहे जिस किसी को अपमानित करती फिरें ?"

और यह युद्ध जारी रहता। फिर मुझे पर्चे का ध्यान आता जूरिस्प्रूडेंस के पर्चे का। परन्तु फिर वही प्रश्न।

"मूर्ख ! वह शायद तुम से मज़ाक कर रही थी, तुम ख़ाहमख़ाह इतना बिगड़ बैठे। तुम विनोद और परिहास को भी नहीं समझ सकते। तुम प्रेमी बनने के योग्य नहीं। प्रेमिका

की मोहक अदाओं से भी कुपित हो जाते हो ? मनुष्य हो अथवा वनमानुष ?

परन्तु मैदान दूसरे वर्ग के हाथ रहा। निर्णय यह हुआ कि मैं तुम से कभी न मिलूँगा और तुमसे नाराज़ी का कारण न पूछूँगा। भला मैं क्यों हार मानूँ ? इसी कशमकश में परीक्षा का समय पूरा हो गया। घण्टी बजी और पर्चा मुझसे छीन लिया गया।

होस्टल में आकर बिस्तर कितना आकर्षक प्रतीत हुआ। दरवाज़ा बन्द कर, सिर पीड़ा का बहाना करके, मैं लेट रहा। परन्तु फिर वही रण-क्षेत्र। आक्रमण और प्रत्याक्रमण, गवाहियाँ और सफ़ाइयाँ। अन्तिम निर्णय फिर वही। लेटे-लेटे दिन बीता। रात आई और मित्र-सेना दरवाज़े पर आ धमकी। मुक्के, धक्के और शोर ! मेरा जी जल उठा। क्या मनुष्य को किसी चीज की भी आज़ादी नहीं ? यदि वह स्वेच्छा से हँस नहीं सकता तो स्वेच्छा से रो भी नहीं सकता ?

सुधीर हैरान था कि परीक्षा की रात को मैं यों चुप्पी साधे क्यों लेटा हूँ ? जैसे मेरे लिये लेटना पाप हो। फिर नसीहतों की बौछार ! खैर यह गुज़री कि किसी को व्यंग्य न सूझा। अपने दुख को मैंने अपने ही अन्दर दबा कर रखा था इसलिये आग की लपट मुझे ही जला रही थी।

परीक्षा के शेष दिन ऐसे ही गुज़रे। रात को मैं बिजली के लैम्प के साये के नीचे न बैठ सकता। परीक्षा में एक प्रश्न भी पूरा न कर सकता, इसलिये मेरा मन मुझे ही कोसता। अकारण परीक्षा में न बैठना कहाँ की बुद्धिमानी थी ? आख़िर घरवालों को क्या मुँह दिखाऊँगा ? न जाने मामा जी कितनी कठिनाई से ख़र्च भेजते थे। अब एक साल का और बोझ

उनके सिर पर सवार होगा। प्रिंसिपल और प्रोफ़ेसर क्या कहेंगे! मैं सर्वदा उनके मान का पात्र रहा। जहाँ मेरा परीक्षा में सर्वप्रथम आना आवश्यक था, वहाँ अब केवल पास होने के लाले पड़ रहे थे।

तुम्हारे अभिमान पर भी तो यह प्रबल प्रहार था! तुम भी तो मेरे सर्वप्रथम रहने पर फूली न समाती थीं। तुम्हारा मस्तिष्क भी तो गर्व से ऊँचा उठ जाता था। अब तुम भी सहेलियों में अकड़ कर न चल सकोगी। इस विचार से मुझे सान्त्वना मिली। तुम्हारे लिये यह दण्ड मेरे लिये सन्तोष-जनक था।

अपने विचारों के ताने-बाने में उलझा, बन्द कमरे में कुर्सी पर बैठा रहता। नौकर आकर खाना रख जाता। भूख तो साथ छोड़ गई थी, नींद भी उचाट हो गयी। दाढ़ी बनवाने और बाल सँवारने का अवकाश भी जाता रहा। परन्तु मैं अपनी इस दशा में भी अप्रसन्न न था। हाँ, मित्रों की शिकायतें होने लगीं और उनके शिकवों के ढेर बढ़ने लगे। पहले तो मेरे क्रोध के डर से वे मुझे अधिक न सताते, परन्तु मेरे लगातार बिगड़ते स्वास्थ्य ने उन्हें चिन्तित बना दिया।

एक दिन सुधीर, रामप्रकाश, वृन्दावन, गुरुबख्शसिंह, हमीद और अख्तर को साथ ले कर मेरे कमरे में घुस आया। वे सब मुझे ज़बरदस्ती खींच कर बाहर ले गये। मेरा विरोध उन पर कुछ असर न कर सका। लारेंस की सैर के बाद हम वापिस लौटे। होस्टल न जाता हुआ मैं यूनिवर्सिटी क्रिकेट ग्राउंड की ओर बढ़ा। मेरे सायंकाल की सैर का यही स्थान था। प्रतिदिन मैं इसी ग्राउंड के चक्कर काटता। वहाँ की प्रत्येक वस्तु से मुझे प्रेम था। इतने दिन उधर न जा सकने के कारण मेरा मन और भी उकसाया।

वहां पहुँच कर मैंने एक दीर्घ निश्वास वायु में छोड़ा। अचानक मेरी दृष्टि लड़कियों के एक झुरमुट पर पड़ी। उन्हें देख मैं वहीं खड़ा खड़ा घूरने लगा। बस यों ही। परन्तु मुझे वहाँ खड़े देख तमाम निगाहें मेरी ओर उठ गयीं। फिर उनमें कानाफूसी होने लगी और दो निगाहें मेरी ओर बढ़ीं। मैं विस्मित हो खड़ा रहा। मन में आया कि भाग निकलूँ, परन्तु इतने में वह लड़की समीप आकर बोली—

"ज़रा मेरे साथ आइयेगा ?"

"म......म...मैं ?" मैंने घबराहट के साथ और अपनी ओर उँगली से इशारा करते हुये पूछा।

"हाँ, हाँ, आप !" उसने सिर हिला कर कहा।

"किन्तु देखिये मैंने तो कुछ भी नहीं किया, मैं तो दूर से पेड़ों की ओट में सूर्यास्त होते देख रहा था," मैंने सफ़ाई के तौर पर कहा।

"सचमुच सूर्यास्त हो रहा है। जरा समीप आ कर देख लीजिये," वह पहेली डालने के अन्दाज़ में बोली और आगे बढ़ी।

मैं उसके पीछे हो लिया। मेरे पहुंचने पर लड़कियों का झुरमुट एक ओर हट गया। देखा तो तुम भूमि पर बेहोश पड़ी थीं। पाँव तले से ज़मीन निकल गयी

मैंने झट बैठ कर तुम्हारा सिर अपनी जंघा पर रख लिया। स्नेहप्रभा ने चुपके से एक रूमाल मेरे हाथ में दे दिया। मैंने उसे तुम्हारे मुँह पर निचोड़ा और तुम्हारी आँखों पर फेरा। धीरे धीरे तुमने आँखें खोलीं। एक लम्बी आह खींच कर फिर उसी तरह बन्द कर लीं।

"उठो भी"—स्नेहप्रभा बोली।

तुमने फिर आँखें खोलीं। उनसे आँसुओं की झड़ी जारी थी। परन्तु वे आँसू एकाकी न थे। उनमें कुछ और आँसू भी आ मिले थे, दूसरी दो आँखों से, जो टकटकी बाँधे तुम्हारी ओर देख रही थीं।

इस नाटक की एक एक तफ़सील मेरे हृदय पर अंकित है।

बहुधा मैं ऐसा अनुभव करता हूं कि जैसे अभी यह कल ही की बात हो। हमारा मस्तिष्क एक विचित्र वस्तु है जहाँ कुछ बातें मिट जाती हैं और कुछ सदैव अटकी रहती हैं, जैसे कुछ काल पश्चात् मेयो हस्पताल में हमारी भेंट। सुधीर की बीमारी के कारण मुझे प्रायः वहाँ जाना पड़ता था। एक दिन तुम भी अचानक मिल गयीं। बरामदे में खड़े हम परस्पर शिकायतों की गाँठें खोल रहे थे कि एक घायल व्यक्ति को हमारे पास से ले जाया गया। न जाने उसे देख कर तुम्हें क्यों ग़श आ गया। मैं घबरा गया। तुम्हें इस दशा में देख कर मेरे होश गुम हो गये और सुझाई देना बन्द हो गया। उसी समय पास से एक डाक्टर गुज़रा। तुम्हें संज्ञाहीन देख, मुझे डाँट कर बोला, "अजी, इस प्रकार बौखलाये हुये क्यों खड़े हो?" और उसने झट तुम्हें गोद में उठा कर, एक कमरे में ले जा कर, बिस्तर पर लिटा दिया।

यह सब इतनी तेज़ी से हुआ कि डाक्टर के चले जाने के बाद ही मुझे यथार्थता का ज्ञान हुआ। मुझे उस डाक्टर पर बहुत क्रोध आया। परन्तु वह क्रोध विफल था। मैं जल्दी रूमाल से तुम्हें पंखा झलने लगा। तेज़ी से घूमते हुये बिजली के पंखे पर मुझे ज़रा विश्वास न था। उसी समय एक

चपरासी को भेज कर संगतरे मँगवा कर उनकी फाँकें एक-एक करके तुम्हारे मुंह में डालने लगा।

"तुम्हें ग़श से क्यों इतना प्यार है?" मैंने तुम्हारे बारीक अधरों के मध्य धीरे से संगतरे की फाँक रखते हुए पूछा।

"मुझे नहीं, ग़श को मुझसे प्यार है," तुमने होंठों में कहा! "और इससे मुझे धीरज मिलता है।"

"भला क्यों!"

"इसलिये कि किसी को तो मुझसे प्यार है," तुमने दीर्घ निश्वास छोड़ते हुये कहा।

"और इसी कारण मुझे इससे घृणा है," मैंने संगतरे की फाँक साफ़ करते हुये कहा।

"भला क्यों?"

"प्रतिद्वन्द्वी ठहरा ना!"

जब तुम्हें घर पहुँचा कर मैंने लौटने की आज्ञा माँगी, तो तुम सहसा पूछ बैठीं,

"भला ग़श आने पर मुझे किसने उठाया था?"

"एक भाग्यवान् डाक्टर ने?"

"तुमने क्यों नहीं उठाया?" कुछ देर बाद तुमने पूछा।

"फिर ग़श पड़ने पर मैं ही उठाऊँगा।"

और तुमने एक हल्की सी चपत मेरे मुँह पर लगा दी।

अब मैं जैसे तुम्हारे घर का ही व्यक्ति था। प्रतिदिन तुम्हारे घर आ कर हाज़िरी भरना आवश्यक था। मेरा आना किसी को अखरता भी न था, शायद कभी कभी तुम्हारे पिता जी को थोड़ा बहुत अखरता हो। परन्तु लाड में पली हुई

इकलौती बेटी के सामने कौन दम मार सकता है? तुम्हारे सामने वे भी चुप्पी साध लेते। घण्टों हम बातों में तल्लीन रहते। न जाने कितने विभिन्न विषयों पर बातें होतीं, कभी-कभी तुम्हारे पिता जी भी आकर सम्मिलित होते।

तुम्हारी मौजूदगी में जीवन यथार्थ सौंदर्यमय प्रतीत होता। तुम्हारे सामीप्य में व्यतीत किये हुये घंटे छोटे-छोटे क्षण प्रतीत होते और तुम्हारी अनुपस्थिति में गुजारा हुआ एक एक क्षण एक-एक शताब्दी सा जान पड़ता।

एकान्त में दिल पूछता, "इसका परिणाम जानते हो? यदि उसे न पा सके तो क्या जीवित रह सकोगे?"

परन्तु उसी क्षण उत्तर मिलता, "भला तुम और बन ही किसकी सकती हो?"

याद है जिस दिन तुम चन्द्रलेखा से मिलने गईं थीं और मुझे उसके छोटे भाई के हाथ कालेज में सन्देश भेजा था? मुझे यह आदेश था कि तुम्हें तुम्हारे घर पहुँचाऊँ। क्या दिन था वह भी! तुम्हारा सौंदर्य पूर्णिमा के चन्द्रमा को लज्जित कर रहा था। मार्ग में पड़ते हुए पार्क में पहुंच कर मैंने कहा "ज़रा ठहरिये तो।"

"क्यों?"

"मैं तुम्हें जी भर कर देखना चाहता हूँ।"

"ऐसा मत कहो," तुमने घबड़ाकर कहा।

"किस लिये?"

"क्या फिर कभी न देखोगे?" तुमने उसी तरह घबड़ाहट की हालत में कहा।

"अरी पगली", मैंने हँस कर कहा, "मैंने तुम्हें इतनी

लावण्यमयी कभी न देखा था। हाँ ज़रा सीधी खड़ी रहो, बिलकुल तन कर, बस यों।"

"लो!" तुमने मुस्कुराकर कहा।

"और सुनो, मैंने गम्भीरता से कहा, "क्या तुम मेरी एक बात मान सकती हो?"

"भला और किसकी मानूंगी?"

"तुम प्रतिदिन यही साढ़ी पहन कर मुझे इसी पार्क में मिला करो।"

तुम हँसी से बल खाती हुई बोलीं, "क्या कमाल की बात करते हो तुम भी कभी कभी, मैं तो घबड़ा ही गई थी।"

"तो क्या तुम ऐसा न करोगी?"

"मैं और तुम्हारे लिये ऐसा न करूँ, उमेश?" तुमने आँखों में आँखें डालते हुये कहा। फिर एक दीर्घ निश्वास छोड़ कर बोलीं, "उमेश, तुम्हारे लिये तो मैं शरीर के टुकड़े टुकड़े करवा सकती हूँ, आह भरे बगैर, परन्तु तुम·······"

और तुमने मुंह दूसरी ओर फेर लिया। न जाने क्यों तुम्हारे मृग से नयनों से बड़े बड़े आँसू टप टप गिर पड़े। मैंने झट रूमाल निकाल कर उन आँसुओं को पोंछा।

"पगली कहीं की। भला तेरे पास आँसुओं का समुद्र है? मुझे भी इसमें से कुछ दे दो न?"

"यह वरदान मत माँगो, उमेश।" तुमने आह भर कर कहा।

आँसू तुम्हारी आँखों के अन्दर तैर रहे थे।

"सुनो उमेश !" तुम सहसा बोल उठीं, "आजकल तुम्हारी आँखें लाल क्यों रहती हैं ?"

"नशा पीता हूं।"

"किसका ?"

"किसी के प्रेम का "

"किसके प्रेम का ?"

"यह न बताऊँगा !"

"तो हम भी न बतायेंगे ।"

"क्या ?"

"कि हम भी प्रतिदिन किसी के स्वप्न देखते हैं ?"

"स्वप्नों में क्या देखती हो ?"

"यही कि हम दूर आकाश में उड़े जा रहे हैं। विरोधी हवायें हमें और भी उकसा रही हैं। संसार की निगाहें हमारी उड़ान की ताब नहीं ला सकतीं और सुनो उमेश ! एक रात मुझे एक विचित्र स्वप्न दिखाई दिया।"

"क्या ?"

"तुम मुझे अपनी बाहों में थामे खड़े हो और माता जी हमें देख लेती हैं।"

"क्या कहती हैं ?"

"तुम्हें ऐसा करते हुये लाज नहीं आती ?"

"सचमुच" ! मैंने घबड़ाकर पूछा।

"किन्तु ऐसा कहने के बाद वह पश्चाताप कर रही हैं।" मैंने सांत्वना का दीर्घ श्वास लिया।

"तो उमेश !.........."

"कहो ना। रुक क्यों गयीं ?"

"अब यदि माता जी तुमसे पूछेंगी तो हाँ कर देना ?"

"क्या पूछेंगी ?"

"जाओ, मुझे बनाओ मत। तुम सब समझते हो और फिर भी पूछते हो।"

जब लौट कर आया तो मामा जी का तार पड़ा था। परीक्षा समाप्त हुये कई दिन हो चुके थे और मैं अभी वहीं था। बहाना भी न बना सकता था। लिखा था—

"तुम्हारी मामी जी सख्त बीमार हैं। शीघ्र आओ।"

गाड़ी रात को छूटती थी। तुम्हें मिलने का समय न था। फिर मैं जानता था कि शीघ्र लौट आऊँगा।

कुछ दिनों के बाद घर पर पार्टी थी। नगर के प्रतिष्ठित सज्जन आमंत्रित थे। बाहर बाजा बज रहा था, अन्दर स्त्रियाँ गा रही थीं। प्रतिवर्ष मामा जी मेरा जन्मदिन इसी धूम-धाम से मनाते थे। पंडित लोग आकर हवन करते। वेदमंत्रों का जाप होता। जब वेदमंत्रों का जाप हो चुका तो मामा जी खड़े होकर लोगों को सम्बोधित कर हाथ जोड़ कर बोले,

"आपको यह जान कर हर्ष होगा कि मेरा उमेश वकालत की परीक्षा दे कर आया है। भला उमेश का हमेशा की तरह प्रथम आने में किसे सन्देह हो सकता है ? मैं अपने बचपन के मित्र लाला कुन्दनलाल को नाराज़ न कर सकता था। उनके आग्रह पर मैंने उनकी सुपुत्री का सम्बन्ध उमेश के साथ स्वीकृत कर लिया है। इसी कारण आप सब को कष्ट दिया गया है।"

चारों ओर से बधाइयों की वर्षा होने लगी। प्रत्येक बधाई का एक एक शब्द मेरे लिये बज्र का काम कर रहा था। मैं अनुभव कर रहा था कि मानो भारी पत्थर मेरी छाती पर पड़े हैं और दर्द की तेज़ी से कराह रहा हूँ। परन्तु बोझ का आधिक्य मेरी आवाज़ को दबाये हुये है। न मुझ में उठने की शक्ति है, न शोर मचाने की। हज़ार कोशिश के बावजूद मेरी आवाज़ नहीं निकल सकती। लाख प्रयत्न के बावजूद मैं चीख नहीं सकता। प्रहार इतना अचानक और सख्त था कि उसे रोकने का अवसर ही न मिला। पत्थर का बुत बना मैं निर्जीव सा बैठा रहा।

मिन्नत, बहस और क्रन्दन निरर्थक और धमकी व्यर्थ सिद्ध हुई। मामा जी बोले—

"बेटा, तुम अभी बच्चे ही थे जबसे कुन्दनलाल से प्रतिज्ञा किये बैठा हूँ। उनकी लड़की बी० ए० पास है। तुम्हारी मामी तो उस पर जान छिड़कती हैं। फिर वह तुमसे भी कितना प्रेम करती हैं! क्या तुम ऐसी अच्छी और भावुक मामी को नाराज़ करने का विचार भी कर सकते हो? और फिर तुम्हारे लिए तो वह माँ से भी बढ़कर है। माँ की तो तुम्हें याद ही नहीं। उसने आज तक तुम्हें माँ की याद नहीं आने दी। तुम्हारे कारण उसे अपने सन्तानहीन होने का लेशमात्र दुख नहीं हुआ। तुम्हीं उसकी दुनियाँ हो, आज उसका दिल दुखा कर देख लो, कल उसे जीवित न पाओगे।"

फिर बोले—

"कामिनी को तो तुम जानते ही हो। कितने वर्षों से मन-मन्दिर में एक ही देवता की तस्वीर बनाये बैठी है। यदि वह तस्वीर उससे छिन गई तो उसका हृदय चूर-चूर हो जायगा।"

कुछ क्षण पश्चात् बोले—

"बेटा, मुझ पर तो दया करो। इस बुढ़ापे में तो मुझे अपमानित और निराश न करो। तुम्हारे सिवा मेरा है भी कौन ? मेरी केवल यह याचना है कि इन श्वेत बालों की लाज रखो। किन्तु यदि तुम अपनी जिद्द पर अड़े रहना चाहते हो तो इनकार करने से पहले मुझे विष दे दो।"

"मामा जी ऐसा क्यों कह रहे हैं आप ?" उनसे चिमट कर मैं चीख उठा। उनकी आँखों से सोते फूट-फूट कर मेरे सिर को तर कर रहे थे और मेरी आँखों से पानी बह बह कर भूमि को सींच रहा था।

तभी कामिनी आ कर कहती है—

"आइये, खाना तैयार है। ज्यादा सोचा न कीजिए, दिमाग़ पर बुरा प्रभाव पड़ता है।"

देवता

९

देवता

ऊपर आकाश के नीले फ़र्श पर एक छोटा श्वेत बादल इठला रहा था। नीचे पहाड़ों की पथरीली गोद में नदी भागी जा रही थी। दूरस्थित वनों से लकड़ी के भारी तख्ते अपनी उछलती हुई छातियों पर संभाले वह किसी वेग गति गाड़ी के समान दौड़ी जा रही थी जैसे इस भार को हल्का करने की चिन्ता इस वेग गति का कारण हो। उस के यौवन में कितना आकर्षण और उसके सौंदर्य में कितना माधुर्य था। परन्तु उस की उग्रता कितनी प्रचण्ड और उस की क्रूरता कितनी भयङ्कर थी। उसका मदमत्त यौवन हृदय को उल्लसित और उस का उग्ररूप मन को भयभीत करता।

नदी के तीर पर एक विशाल शिला सीना ताने खड़ी थी। शायद शताब्दियों से। लहरें उस से छेड़खानी करतीं। उसके गर्व को पीस कर, उस की हड्डियों को चूर कर देने की चेष्टा करतीं। चट्टान उन के निरर्थक प्रयास पर

मुस्कुरा देती। हार खाकर उन की क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो उठती। इस क्रोध को वे नदी के वक्षस्थल पर बहने वाली लकड़ी की शहतीरियों पर निकालतीं। जब कोई अभागी शहतीरी उन के चंगुल में फंस जाती तो वे उसे पूरे ज़ोर से चट्टान से दे मारतीं। बेचारी शहतीरी वहीं दम तोड़ देती। उस का मार्मिक क्रन्दन नदी के व्यापक गीत पर छा जाता।

हम शिला पर बैठे नदी पार करने वालों को देख रहे थे। रस्से का झूला चट्टान के पास आकर रुक जाता। पार करने वाला झूले में बैठ जाता। दोनों हाथों से आरपार लटकते हुये रस्से को थामते हुये वह अपनी यात्रा आरम्भ करता। तेजी से भागती हुई नदी पर दृष्टिपात करते ही उस के हृदय की धड़कनें एकदम तेज़ हो जातीं। हृदय की एक एक धड़कन नदी की समूही धड़कनों से कितनी अधिक तेज़ होती। उसे ऐसा प्रतीत होता कि पानी स्थिर खड़ा है और वह किसी वायुयान में सवार दूर किसी अनजानी मंज़िल की ओर उड़ा जा रहा है और क्षुधार्त लहरें उछल उछल कर उसे दबोचने में व्यस्त हैं।

मेरे पश्चात् सुरेश ने और उस के बाद प्रबोध ने पुल को आर पार किया। सालिगराम भी ऐसा करता परन्तु उसे सरला को नाराज़ करना स्वीकार न था।

हमारे मध्य चट्टान पर बैठे हुये प्रबोध ने कहा,

"सालिगराम जी। आप ने कहानी सुनाने का वादा किया था ?"

"क्या नदी का प्रवाह स्वयं एक कहानी नहीं ?" सालिगराम ने एक विशाल शहतीरी को चट्टान से टकराते देख गंभीरता से उत्तर दिया।

उन की आयु चालीस के लगभग होगी। सिर के दोनों ओर काले और सफ़ेद बाल उगे थे। बीच में चटियल भूमि के समान सिर खाली पड़ा था। परन्तु मुख का रक्तवर्ण अब भी वैसे ही था।

"परन्तु प्रतिज्ञा पालन तो करना ही होगा," सुरेश ने प्रबोध का समर्थन करते हुये कहा।

इतने में सामने के पर्वत के उस पार से काली घटायें उठीं। वर्षा के पश्चात् चिकनेपन के कारण मार्ग ख़राब हो जाता था। वर्षा से पहिले लौट जाना आवश्यक था। सब से आगे सालिगराम थे। उन के साथ साथ सरला। उन के पीछे सुरेश, उस के पीछे प्रबोध और सब के पीछे मैं। हम संभल संभल कर पग रख रहे थे, जैसे हमारी समस्त विचार शक्ति एक ही बात पर केन्द्रित हो। नदी के किनारे लगभग सीधे खड़े हुये इस शुष्क पहाड़ पर हम धीरे धीरे चल रहे थे। यहां से नदी में फिसलना कितना आसान था जहाँ उस की लहरें सांस पीने और रक्त चूसने के पश्चात् हड्डियों के पुर्ज़ों तक को हज़्म कर सकती थीं।

पहाड़ पर चढ़ जाने के बाद एक पर्वतीय नाले के पथरीले पाड़ को पार करना कितना सुगम था। तभी ज़ोर की वर्षा हम पर टूट पड़ी। परन्तु अब हम निर्भीक हो वर्षा का आनन्द उठाते हुये आराम से चल रहे थे।

रात के खाने से निवृत्त होने के बाद हम चौपाल में चार-पाइयों पर आकर बैठ गये। पूर्णिमा का चन्द्रमा अपनी शुभ्र ज्योत्स्ना से घाटी में निवासित प्राणियों को मदमत्त कर रहा था। आम और रीठे के वृक्ष चन्द्रमा को मस्त नृत्य से आह्लादित कर रहे थे। नदी उसे एक अविरल गीत सुना रही थी।

मैंने कहा, "सालिगराम जी, प्रतिज्ञा याद है न ?"

"हाँ।" वह बोले। "लो सुनो।"

मेरे पिता जी एक नगर में व्यापार करते थे। लक्ष्मी उन से प्रसन्न थीं। कारोबार उन्नति पर था। किसी वस्तु की कमी न थी। संसार के सब सुख उन्हें प्राप्त थे। नौकर चाकर थे। गायें भैंसें थीं। घोड़ा गाड़ी था और एक बाग़ीचा भी। सांय को हम तीनों भाई अपनी छोटी बहिन के संग गाड़ी में सवार हो कर बाग़ीचे की सैर को जाते। जब कोचवान श्वेत घोड़े को चाबुक दिखा कर उसे तेज़ दौड़ाता, लोगों की स्पर्धा भरी दृष्टि हमारा पीछा करती। जब हमारी गाड़ी बाज़ार से गुज़रती, उन की निगाहें ऊपर उठ जातीं।

परन्तु यह सुख ऐश्वर्य पिता जी के भाग्य में न बदा था। उन्हें कारोबार से छुट्टी ही न मिलती थी। कार्यव्यस्त रहने के कारण उन्हें किसी और काम की सुध ही न रहती। न समय पर खाना-पीना होता, न सोना-जागना। पूजा पाठ के लिये समय निकालना तो असम्भव सी बात थी। रुपया ही उनका ईश्वर था। इसके लिये वह कहीं भी जाने और कुछ भी करने को तत्पर रहते। प्रायः वह प्रातः उठ कर चले जाते और रात गये आते। बहुधा हम उन के दर्शन को तरसते। माताजी बुड़बुड़ातीं। "भाड़ में जाये सोना जो कान को खाये। ऐसी अमीरी से तो ग़रीबी अच्छी। क्या पैसा ही सब कुछ है। स्वास्थ्य और दान पुन भी तो आवश्यक हैं।" दादी जी कहतीं, "बेटा, कभी तीर्थ यात्रा तो करवा दो। और न सही हरिद्वार ही ले चलो।" वे हंस कर कहते "माता जी, एक दिन हरिद्वार अवश्य चलेंगे।" वह जल उठतीं और कहतीं, "हां, एक दिन तो सब चलेंगे।"

एक रात पिता जी बाहर से लौटे तो दर्द से कराह रहे थे। उन की पीठ पर एक फोड़ा निकल आया था जिस ने उन्हें सारी रात बेचैन रखा। जर्राह की मरहम ने कोई लाभ न किया। जब हस्पताल के बड़े डाक्टर ने आकर कहा कि "यह कारबकंल फोड़ा है और बीमार को दिल्ली ले जाओ" तो सब घर वालों के होश गुम हो गये। एक अकथनीय ग़म ने हमें आ दबाया। पिता जी दिल्ली जाने को अब भी उद्यत न थे। परन्तु इन्कार करते भी न बनी। एक विशेषज्ञ ने उन का आपरेशन किया किन्तु विषाक्त फोड़ा ठीक न हुआ और पिता जी के प्राण लेकर ही रहा।

इस दुर्घटना ने जैसे हमारी कमर तोड़ दी। यह मृत्यु हमारे कुटुम्ब के लिये अत्यन्त अभद्र सिद्ध हुई। किरयाकरम वाले दिन दादी चल बसीं और एक मास पश्चात् माता जी। जैसे यमराज अब भी संतुष्ट न हो, उसने मेरे बड़े भाई और बहिन के नाम भी परवाने भेज दिये। शायद यह देवताओं का षड्यंत्र था अथवा प्रकृति का नियम। केवल मैं और मेरे छोटे भाई राधाकृष्ण ही अपने कुटुम्ब की बची खुची निशानी रह गये।

हमारी सम्पत्ति तथा हमारे पालन पोषण का प्रबन्ध हमारे मामा जी के सिर पड़ा। अपने गाँव की छोटी सी दुकान को सदा के लिये ताला लगा कर वे, मामीजी और अपने दो बच्चों नरेश तथा सुभद्रा को लेकर एक दिन मध्यान्ह समय हमारे नीरव से प्रासाद में आ पधारे। दो छकड़ों पर उनकी समस्त सम्पत्ति लदी थी। नौकर उन मैले बिस्तरों, पुराने बर्तनों और सड़ी वस्तुओं को निकाल कर अन्दर रख रहे थे और उनके नेत्रों ने सावन की झड़ी लगा रखी थी।

धीरे धीरे मामा जी ने पिता जी का सारा कोरोबार सम्भाल लिया। इसमें उन्हें कोई असुविधा न हुई। अनुभवी तथा बुद्धिमान थे ही। घर की पुरानी शान बनी रही। वही कारोबार, नौकर चाकर, गायें भैंस तथा घोड़ा गाड़ी। परन्तु सब कुछ होते हुये भी मेरा दिल उदास रहता और राधाकृष्ण का भी। हम घर में बेगानों की तरह रहते। हमारा अपना घर हमें पराया लगता। हम माताजी को सारा दिन सताया करते थे। परन्तु अब भूक लगने पर भी मामी जी से कुछ मांगने का साहस न करते। जब वह खाने को देतीं हम खा लेते नहीं तो चुप साधे रहते। मामी जी से बात तक की हिम्मत न होती थी। माता जी से वह प्रत्येक बात में भिन्न थीं। शायद तब तक मैंने मामी सी सुन्दर तथा जवान स्त्री को न देखा था। उनके अच्छे स्वास्थ्य का एक भेद था। वे अपनी खुराक का विशेष ध्यान रखती थीं। भोजन पाने से पूर्व वे सब खाद्य-पदार्थों में से अपना भाग निकाल लेती थीं। अवशिष्ट भोजन पर निर्वाह करना वह स्त्री जाति का अपमान समझती थीं। जब स्त्रियां गृहकार्य में पुरुषों से आगे हैं तो खाने में क्यों पीछे रहें? स्वास्थ्य है तो सब कुछ है, नहीं तो सारा गृहस्थ चौपट हो जाये। रसोई घर की अलमारी के सब से ऊपर के खाने में उनके खाद्यपदार्थ सज जाते। कई कटोरियों म मक्खन, दही और दाल, सब्ज़ी और अचार सजा कर रख दिया जाता था। एक बड़ी प्लेट में फल भी रख दिये जाते। मामीजी का आदेश था कि बागीचे से तमाम फल सीधे घर आयें। किसी का साहस न था कि वहां से फल खा सके।

अपने बाद उनके ध्यान का केन्द्र नरेश तथा सुभद्रा थी। प्रायः वे हमारे साथ बैठ कर खाना न खाते थे। नरेश मामी

से नाराज़ रहता। उसे इस बात की शिकायत थी कि वह सुभद्रा को उससे अधिक मिठाई देती हैं।

एक रात हम बिस्तर पर लेटे थे। सुभद्रा और राधाकृष्ण सो गये थे। मैं नींद का बहाना लगाये पड़ा था। तभी मामी जी भोजन पाकर आईं। नरेश एकदम बोला,

"पिता जी, आज माता जी ने फिर सुभद्रा को मुझसे अधिक बर्फ़ी दी। मुझसे बोलीं, 'सालो और राधे को मत बताना। तुझे और दूंगी', परन्तु जब मैंने और मांगी तो मुझे मारने लगीं।"

"क्यों, क्यों तुम ने सालो और राधे को मिठाई नहीं दी?" मामा जी ने हैरानी से पूछा।

"यह तो बकता है", मामी जी ने कहा। "मिठाई थी ही कितनी?"

"तो ज्यादा मंगवा ली होती। भला यदि इन बच्चों को इस बात का पता चले, तो कितना बुरा मनायें।"

"आप भी तो अनर्थ ढाते हैं," मामी जी उत्तेजित होकर बोलीं। "क्या मैं कोई निर्दयी हूँ कि इनका ध्यान नहीं रखती? चार टुकड़े तो बर्फ़ी थी।"

नरेश मामी पर कुपित था। झट बोल उठा,

"पिता जी, माता जी झूठ कहती हैं। मेरे सामने तो रूल्दू हलवाई स्वयं एक सेर मिठाई दे कर गया है। ताज़ा मिठाई बनने पर वह प्रतिदिन लाता है।"

मामी जी को जैसे बिच्छू ने काटा हो। रोष से हांपती हुई वे नरेश की ओर लपकीं और उस पर टूट पड़ीं। उन के हाथ मुक्के बरसा रहे थे, ज़बान गालियां तथा आँखें आँसू।

मामा जी ने बढ़ कर चीखें मारते हुये नरेश को गोद में उठा लिया और उसे पुचकारने लगे। आंखों को दुपट्टे के आंचल से पोंछती हुई, मामी जी रुंधे हुये गले से बोलीं,

"ऐसी संतान से तो मैं बांझ ही अच्छी थी। न जाने इन्हें मौत क्यों नहीं आ जाती। और कोई सुने तो समझे शायद यह बात सत्य है।" और फूट फूट कर रोने लगीं। मामा जी घबड़ाकर बोले,

"तुम भी तो अजीब बात करती हो। भला बच्चों की बात को कौन विश्वसनीय मानेगा?"

मैं दुबक कर लेटा रहा। एक अकथनीय भय मुझे खाये जा रहा था।

स्कूल जाते समय मेरे तथा नरेश के वस्त्रों में बहुत अन्तर होता। वह सिल्क के वस्त्र पहने, सुन्दर जूता तथा चमड़े का बस्ता लटकाये स्कूल जाता, मैं भी साधारण कपड़ों में उसके साथ गाड़ी में बैठ कर स्कूल जाता। लड़के मुझे चिड़ाते, "नौकरानी का लड़का, मालिक के लड़के के साथ सवारी करता है।"

नरेश को प्रतिदिन जेब खर्च को चार आने मिलते। एक दिन उस ने मामा जी से शिकायत की कि मामी उसे अधिक पैसे नहीं देतीं। मामा जी मामी जी से बोले,

"अच्छा, नरेश और सालो को पांच पांच आने दे दिया करो।"

मामी जी "अच्छा" कह कर चुप हो गईं।

अगले दिन से नरेश को पांच आने मिलने लगे। मुझे तो पैसों की आवश्यकता ही न थी।

बैजू हमारा पुराना अश्वपालक (साइस) था। न जाने उसे देख कर मेरे हृदय को क्यों ढारस होती। इतने विशाल भवन में, इतने नौकरों चाकरों के मध्य मैं अपने आप को अकेला महसूस करता। बैजू को देख कर मुझे प्रतीत होता कि माता जी का प्रेम और पिता जी का प्यार उसमें सिमिट कर समाया हुआ है। स्कूल में आधी छुट्टी मिलने पर मैं पीपल के नीचे उस के पास आकर बैठ जाता। वह मुझे इधर उधर की बातें सुनाता और प्रतिदिन एक आना खर्च के लिये देता। बहुधा बातें करते समय उसकी आंखों के अन्दर पानी तैरने लग जाता और उसका गला रुन्ध जाता। मैं यह न समझ सकता और पूछता, "बैजू, यह क्यों ?" वह कुछ कहने का असफल प्रयास करता।

एक दिन मैंने परदे की ओट से सुना। मामी जी तेज़ आवाज़ में बोल रही थीं।

"क्या तुम इसे बिगाड़ना चाहते हो ?" वह गर्ज कर बोलीं।

"मालकिन, भला मैं काहे को बिगाड़ूंगा इसे ?"

"मुझे नरेश से सब पता चल गया है कि तुम इसे रोज़ पैसे देते हो। क्या भिक्कारियों का लड़का है कि तुम इतना दुस्साहस करते हो ?"

"मैं कौन दुस्साहस करने वाला, मालकिन।" वह बोला। कुछ चुप रहने के बाद वह सहसा बोल उठा,

"परन्तु यह देखा नहीं जाता कि नरेश तो रोज़ घर और स्कूल में मिठाइयां खाये और यह तरसता फिरे!"

"बकवास बन्द कर!" मामी जी गर्ज कर बोलीं।

"नौकर हो कर इतनी ज़बानदराज़ी करते तुम्हें लज्जा नहीं आती ?"

"लज्जा तो सचमुच आती है, मालकिन। घर के वास्तविक मालिक की इस दशा को देखकर लज्जा क्यों न आये ?"

"बैजू, नमक हराम !" मामी चिल्ला कर बोलीं। "निकल जा यहां से। आज से तेरी नौकरी बन्द। खबरदार, यदि फिर कभी इस घर में क़दम रखा !"

और तीस वर्ष का पुराना बैजू घर से निकाल दिया गया।

स्कूल की आधी छुट्टी के समय वह मुझे छिप छिप कर मिलता और एक आना देता। मैं भी छुट्टी मिलते सीधा पीपल के वृक्ष के नीचे जाता। इतने लम्बे दिन में बैजू के सामीप्य में काटे हुये वे कुछ पल कितने सुनहरी प्रतीत होते थे। मेरा शेष समय या तो इन पलों की प्रतीक्षा में गुज़र जाता या उनकी मधुर स्मृति में। एक दिन उसकी आँखों में आंसू देख कर मैं विस्मित हो गया।

"बैजू, यह क्या ?" मैं ने घबड़ाकर पूछा।

"नन्हें बाबू, मैं आज यहां से जा रहा हूँ।" दो बड़े बड़े आंसू उस की आँखों से मुक्ति पाकर मिट्टी से गले मिल गये।

"मुझे भी ले चलो, बैजू," मैंने रोकर याचना की। फिर उसी समय मैंने पूछा, "परन्तु, तुम जा कहां रहे हो ?"

"अब इस शहर में गुज़ारा नहीं चलता। खाली बैठे सब रुपया समाप्त कर चुका हूं। दूसरे स्थान पर नौकरी को दिल नहीं चाहता। अब घर जा रहा हूँ। केवल किराया ही मेरे पास बचा है।"

और चुपके से उस ने एक रुपया मेरे हाथ में खिसका दिया। फिर बोला,

"अच्छा, ज़रा ध्यान से रहना। इस नागिन से बचना। होनी को कौन टाल सकता है। यदि आज मालिक और मालकिन जीवित होते तो…………"

और न जाने क्यों उस की आँखों से टप टप आँसू बहने लगे और वह मुंह फेर कर चल दिया।

मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि मेरा एक सहारा चला गया है। सिर पर एक बोझ सा आ पड़ा। मैं बहुत उदास रहने लगा। मामी जी डांट बता कर कहतीं,

"न जाने यह प्रतिदिन मक्कड़ क्यों बनता जाता है। इस का दिमाग़ तो बिल्कुल काम नहीं करता, फिर इसे स्कूल क्यों भेजा जाता है?"

राधे को स्कूल भेजना उचित न समझा गया था। दुकान पर भी तो काफ़ी काम था। वह मामा जी का हुक्का सुलगाता। घर से नौकरों का खाना ले जाता। मध्यान्ह को घर पर कपड़े धोता। बर्तन भी मांजने होते क्योंकि नौकर तो अधिक काल रह ही न पाता था। मवेशियों की देख भाल भी उस के सिर थी। रात को मामी जी कहतीं,

"अरे राधे, तुम्हें शाम ही को नींद आ जाती है, जैसे पहाड़ खोदता रहा हो। यदि काम करना पड़े तो न जाने क्या करे। अपने मामा जी की टांगें ही दबा दिया कर। सारा दिन दुकान पर बैठे बैठे दर्द करने लग जाती हैं।"

वह चुपचाप उठकर आज्ञापालन करता। न जाने ज़ालिम नींद कहां आड़ में छिपी होती, एकदम आकर उस पर

आक्रमण कर देती। मामी जी का भरपूर हाथ का मुक्का उसे होश में लाता। कई बार वह नींद के ज़ोर से मामा जी के बिस्तर पर ही सो जाता। प्रातः होते ही मामी जी की गालियाँ उस का स्वागत करतीं,

"देखो न इस मूये राधे को। अपने बिस्तर पर भी नहीं मरता।"

सुभद्रा घर पर एक पण्डित जी से हिन्दी पढ़ती थी, उस का भी राधे पर पूर्ण अधिकार था। वह आवाज़ लगाती, "राधे, मुझे पानी का गिलास चाहिए।" या "बाजार से एक पैसे की सियाही लाकर दो।" कभी-कभी उसे कहना पड़ता, "मुझे दुकान पर काम है। यदि एक मिनट की भी देर हो गई तो मामा जी पीटेंगे।" वह जोर से चिल्लाने लगती, "यह मुआ हमारा कोई काम नहीं करता, जैसे हम घर में कुछ भी नहीं। माता जी, देखो यह मेरा जरा सा काम भी नहीं कर सकता।" मामी जी आकर राधे के सिर हो जातीं, और कुछ गालियाँ और मुक्के उस की भेंट करतीं। वह खिसियाना सा हो कर अपने गन्दे कुरते से आँखें पोंछता हुआ दुकान पर चला जाता। वहाँ मामा जी उस पर बरसते, "ये आजकल के लौंडे कितने कामचोर होते हैं, यहाँ से बच कर घर पर मां की गोद में जा बैठते हैं।"

राधा नीची निगाह किये "काम चोर" और "माँ की गोद" की गर्दान रटता।

एक दिन वह बिस्तर से समय पर उठ न सका, मामी जी ने यथारीति गालियों से उस का स्वागत किया। वह उठ कर काम में लग गया। उस की आँखें लाल हो रही थीं। जब वह काम करते-करते अचानक धड़ाम से गिर पड़ा तो

मैंने देखा कि उसे सख्त बुखार है। मैं उसे हस्पताल ले गया। डाक्टर ने बताया कि काम के आधिक्य और नींद और खुराक की कमी के कारण उस की यह दशा है। यदि उसे पूर्ण आराम न मिला तो बीमारी के बढ़ जाने का भय है। जब हम हस्पताल से लौटे तो मामी जी चिमटा लिये खड़ी थीं। इतनी देर की गैरहाजिरी उन्हें सहन न हो सकी, उस के प्रविष्ट होते ही जलता जलता चिमटा राधे के गालों, पीठ और टांगों पर बरसाने लगीं, वह कांपने लगा और गश खा कर गिर पड़ा।

उस का बिस्तर पर पड़े रहना मामी जी को बहुत बुरा लगता। वह क्रोधावेश में बुड़बड़ातीं। "न जाने ये लोग स्वास्थ्य का क्यों ध्यान नहीं रखते। अब इतने दिन दवाई खाते हो गये हैं और उठने का नाम ही नहीं लेता। मुफ्त का आराम भला किसे बुरा लगता है?"

कुछ दिनों के पश्चात राधाकृष्ण का देहावसान होगया!

अब मैं घर में बिलकुल अकेला महसूस करता। माता पिता मर गये। बैजू चला गया। राधा परलोक सिधार गया। मेरा अन्तिम आश्रय भी जाता रहा।

मेरा स्कूल जाना व्यर्थ था क्योंकि राधाकृष्ण का काम संभालना भी तो आवश्यक था। नरेश की पढ़ाई जारी रही। आठवीं कक्षा उत्तीर्ण करने के बाद उसे लाहौर के एक स्कूल में भेज दिया गया।

राधाकृष्ण के सब काम मेरे सिर पर आ पड़े। नरेश जब छुट्टियों में घर आता तो अपने कुछ मित्रों को भी साथ ले आता। उन दो महीनों में मुझे घर के दूसरे कामों के अतिरिक्त उसके मित्रों की देखभाल भी आवश्यक थी। उन

सबमें भी प्राण घर पर बहुधा आता। नरेश के साथ उस का घर आना अनिवार्य सा हो गया था। मुझ पर वह कृपालु रहता। उस का यह व्यवहार मुझे भयभीत बना देता। मुझे सहानुभूति से चिढ़ हो गई थी।

एक बार जब वह बड़े दिन की छुट्टियों में घर आया तो प्राण तथा अन्य मित्र भी उसके संग थे। प्रातभोजन के पश्चात् वे सब सैर को जाते। तब कुछ दिन बाद प्राण का स्वास्थ्य बिगड़ गया। अतः वह घूमने न जा सकता था। एक दिन मैं उस के कमरे में बर्तन उठाने गया तो सुभद्रा को प्राण के बाहुपाश में देख मैं अपनी आँखों पर विश्वास न कर सका।

उसी क्षण दूर से कुत्तों के भौंकने की आवाज़ आई। सालिगराम एकदम मूक हो गये। प्रबोध बोला, "शायद चीता है। इस प्रदेश में चीता बहुत होता है।" चन्द्रमा अपने यौवन पर था। उस की किरणें नदी की लहरों पर नृत्य कर रही थीं और नदी का गान पर्वतों से टकरा कर लौट रहा था।

"उस के बाद क्या हुआ?" सुरेश ने बेचैनी से पूछा।

"इस के बाद? सालिगराम ने आह भर कर कहा। "जैसे किसी नाटक में बहुत सी घटनायें एक दम हो जाती हैं वैसे ही यहाँ भी हुआ। सुभद्रा प्राण के साथ किसी अज्ञात स्थान को चली गई। नरेश मदिरा के नशे में चूर, सड़क पर, मोटर के नीचे आ कर चल बसा। मामी जी जैसे अपने दिमाग को वश में न रख सकीं। उन्हें पागलखाने भेजना पड़ा।

"इन प्रबल प्रहारों ने मामा जी पर अपना असर दिखाया। उन की अद्भुत अवस्था हो गई। न खाने की सुध, न पहनने का होश। फटी हुई कमीज, जीर्ण धोती और टूटे हुये जूते

पहने वह सड़कों और गलियों में फिरते। मेरे लिये यह सब असहनीय था।"

"मैं होता तो चवन्नी की अफ़ीम खिला देता," सुरेश दांत पीस कर बोला।

"सब को अपने किये का दण्ड भोगना पड़ता है।" प्रबोध ने कहा।

"किन्तु मुझे इस का बहुत दुख था," सालिगराम बोले।

"मैं उस जीवन से अभ्यस्त हो चुका था। माता पिता की मृत्यु के पश्चात् मैं मामा जी और मामी जी ही को सब कुछ समझता था। परन्तु अब मुझे मनोवेदना सताने लगी। मामा जी का मैं पूरा पूरा ध्यान रखता। उनको आप नहलाता, उन के कपड़े बदलता, खाना खिलाता। पहिले से उन की अवस्था देखने में अच्छी मालूम देती। परन्तु वास्तव में ऐसा न था। वे अपनी स्मरणशक्ति खो बैठे थे। मूक से रहते, जैसे कोई कीड़ा उन्हें अन्दर से खाये जा रहा हो। परन्तु वे चिर-काल जीवित न रह सके। मामी जी की आत्मा जैसे पागल-खाने के जीवन से ऊब गई। उन का भी शीघ्र देहावसान हो गया।"

"सुभद्रा का क्या बना ?" मैंने उत्सुकता से पूछा।

"कुछ वर्ष पश्चात एक अज्ञात मनुष्य मेरे मकान पर आया और बोला, "सालिगराम आप का नाम है क्या !"

"मैंने कहा,—'कहिये'।"

"आप की बहिन सुभद्रा एक वर्ष बीमार रहने के बाद चल बसी है। उस के पति ने उसे त्याग दिया था। मरने से पहिले वह पत्र लिख गई थी जिस में आप के मकान का पता

लिखा है। साथ ही वह इस बच्चे को आप के हवाले कर गई है उस मनुष्य ने पास खड़ी सरला की ओर संकेत करके कहा ।

"वह सरला को वहीं छोड़ चला गया।

"बैंक में मामा जी का पर्याप्त धन पड़ा था। उसे बढ़ाने की मुझे कोई इच्छा न थी। विवाह करने की मेरी कभी उत्कंठा हुई ही नहीं थी। सरला के आने के पश्चात् मैंने निश्चय किया कि कभी विवाह न करूंगा। इसे मैं बहुत प्यार करता हूँ और इसे पालना पोसना ही अपना धर्म समझता हूँ।"

दूर जंगल में आग लगी हुई थी। सामने नदी के पार ऊंचे पर्वत पर बत्तियाँ टिमटिमा रही थीं। न जाने कहां से आकर मेघ के एक श्वेत टुकड़े ने चन्द्रमा को ढांप लिया।

सहसा प्रबोध बोला,

"सालिगराम जी, आप मनुष्य नहीं देवता हैं।"

परन्तु शायद सालिगराम ने इस बात को नहीं सुना। सरला घबराकर उठ बैठी थी और वे उसे पुचकार कर सुलाने में व्यस्त थे।

सम्मतियाँ

"घर की आन" (उपन्यास)

भाषा, भाव, और टैकनीक सभी दृष्टि से उपन्यास अच्छा और रोचक है। —राहुल सांकृत्यायन

गांव का जीता जागता चित्रण है। —जैनेन्द्र कुमार

वास्तविकता के धरातल पर भावों के आकर्षक भवन खड़े किये हैं। संगर जी की भाषा में चुस्ती है, प्रवाह है, घटनाक्रम में कुतूहल है और चरित्र चित्रण के रंगों में सबलता है।

—वृन्दावनलाल वर्मा

"घर की आन" की सबसे बड़ी खूबी उसकी दिलचस्पी है······जो एक खूबी नहीं, बल्कि खूबियों का समूह है······ श्री संगर की शैली में सरलता और प्रवहमानता के साथ हास्यव्यंग्य का हलका सा पुट सदा रहता है और इसने उपन्यास के कुछ स्थल बड़े ही सुन्दर बना दिये हैं।

—उपेन्द्रनाथ अश्क

"अवगुण्ठन" (कहानी संग्रह)

संगर जी की कहानियों में स्वाभाविकता की गहराई मौजूद है। अनायास मर्म को छू पाने की चुभन भी उनमें है।······ये कहानियाँ प्रकाशित हो जाने पर, केवल उनकी

व्यक्तिगत मार्मिक अनुभूति न रह कर समाज के लिये रसानुभूति का साधन बन गई हैं। इन कहानियों की प्रमुख विशेषता इनकी सादगी की शक्ति है। —यशपाल

"अवगुण्ठन" की प्रायः सभी कहानियाँ रोचक हैं, जिन्हें लेखक ने अपने कलात्मक संतोष के लिये लिखा है। कहानियों के कथानक सीधे साधे हैं, वर्णन सजीव हैं और एक स्वाभाविकता का उनमें समावेश है। —सरस्वती

कथानक बांधने की......कमी को लेखक ने काल्पनिक उड़ानों, भावनाओं के सुन्दर व प्रभावशाली दिग्दर्शन व मंजी हुई भाषा से पूरा कर दिया है। जो कुछ लेखक कहता है, वह स्वाभाविक रूप से पाठक के मर्म को छू लेता है। एक बात विशेष रूप से आकृष्ट करती है, और वह है लेखक की उपमा देने की प्रतिभा। —सरिता

प्रस्तुत कहानियों का अपना तंत्र है या यों कहना होगा कि इनमें लेखक की अपनी शैली है। यह शैली की मौलिकता ही इसकी विशेषता है जिसकी एक अजीब छाप पाठक के दिमाग पर अंकित हो जाती है।......कहानियों की भाषा रोज़मर्रा के मुहावरों से भरपूर, सहज गति लिये हुये बोल-चाल की फबती हुई भाषा है। —राष्ट्रभारती

सत्य प्रकाश संगर का पहाड़ी जीवन और पहाड़ की प्रकृति से बहुत ही घनिष्ठ परिचय है। प्रकृति वर्णन लेखक ऐसा सुन्दर करता है कि पढ़ते पढ़ते पहाड़ी प्रकृति का चित्र सामने आ जाता है और वहाँ के साधारण जन की छोटी-छोटी बातों को भी वह नहीं भूलता। —रानी

मौलिकता के दृष्टिकोण से भी सत्यप्रकाश संगर हिन्दी के गिने चुने मौलिक कहानीकारों में अनायास ही आ जाते हैं।...इन कहानियों में हमें मिलता है यथार्थता पर भावनाओं का भी कलेवर, किन्तु कहीं भी ये कहानियाँ स्वाभाविकता से परे नहीं है। ये कहानियां इस बात की द्योतक हैं कि संगर जी का मानव जीवन का अध्ययन अति गहरा है। इन कहानियों में प्रकृति चित्रण की विशेषता सब से मोहक है। संगर जी प्रकृति के माध्यम को अपने मंतव्यों और उनके अनुरूप वातावरण तैय्यार करने में बड़े सफल तरीक़े से प्रयोग में लाते हैं। कहानियों के चरमोत्कर्ष (climax) और अन्त, संगर जी के सफल टैकनीक के सूचक हैं।

—प्रदीप

संगरजी ने यथार्थवादी पद्धति का कल्पनाशील प्रयोग किया है। सभी कहानियां सुपाठ्य, मनोरंजक और संगरजी के उज्जवल विकास की पूर्वसूचक हैं।

—आल इण्डिया रेडियो (नागपुर)

संगरजी की कहानियां स्वाभाविकता के विशेष गुण से पाठक को अधिक आकर्षित करती हैं। भाषा की सरलता के कारण ये पाठक के मस्तिष्क पर बोझिल नहीं उतरतीं।... पग पग पर नई उपमायें मिलती हैं। कहीं कहीं तो ये भाव सौंदर्य को अत्यन्त रोचक एवं प्रभावोत्पादक बना देती हैं।

—आल इण्डिया रेडियो (जालन्धर)

"नया मार्ग" (कहानी संग्रह)

"नया मार्ग" की कहानियां आडम्बरहीन भाषा में लिखी गई हैं। आडम्बर न होने के कारण इन में स्वाभाविक वेग है और वे विश्वास उत्पन्न करती हैं।......इन कहानियों की सबसे बड़ी सार्थकता यह है कि लेखक समाज उद्धार का बीड़ा उठाये बिना या ऐसी सेवा का डंका पीटे बिना समाज की विषमताओं, अन्तरविरोधों को एक सजग कलाकार के रूप में अनुभव करता है और आडम्बरहीन भाषा में कह डालता है। यदि इसी ढंग की और कहानियां लिखी जायं तो हमारी भाषा और साहित्य के उद्देश्य दोनों ही समस्याओं के सुलझाव में काफ़ी सहयोग मिलेगा।

—यशपाल

संगरजी की कहानियों में यथार्थवाद का सुन्दर समन्वय पाया जाता है। आपने मानव को नज़दीक से देखा और परखा है। इसलिये मनोवैज्ञानिक चित्र खींचने में आप विशेष रूप से सफल हुये हैं। —प्रदीप